जन ज्ञान मासिक

आर्य जनता का अपना
प्रतिनिधि प्रकाशन

वर्ष ३
अंक
८-
मई
१९७०

चांदनी चौक
में स्थापित
स्वामी
श्रद्धानन्द जी
कांस्य-प्रतिमा

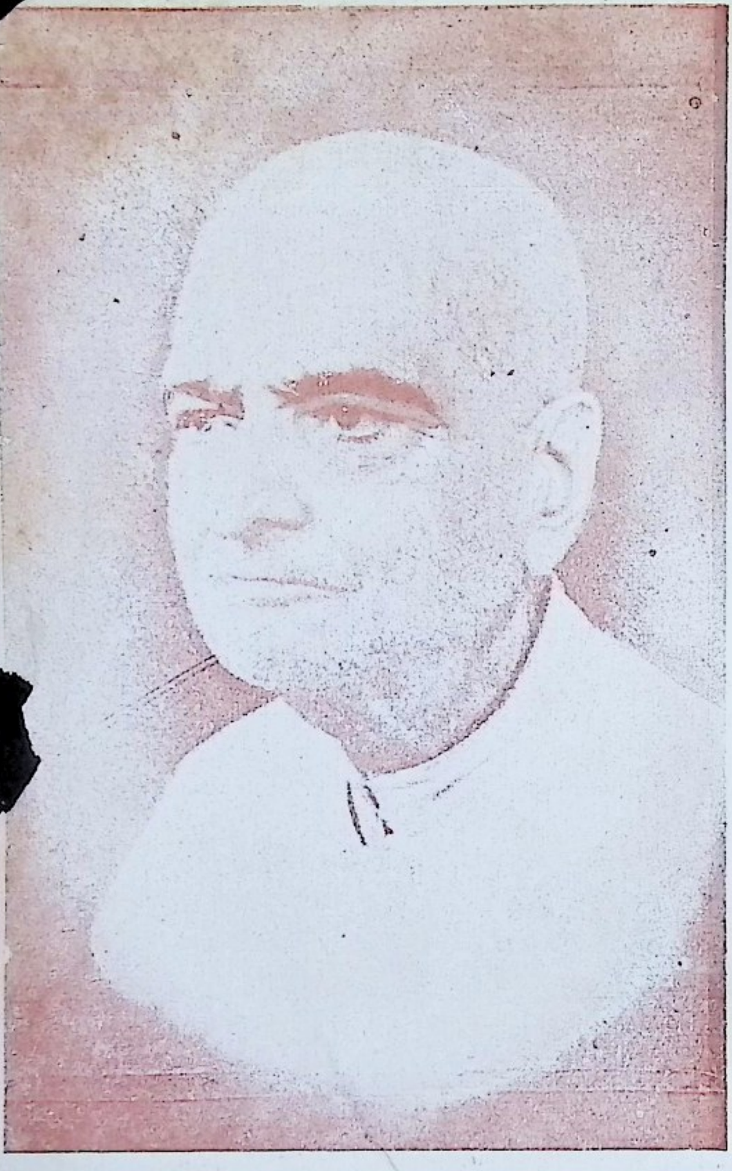

वेद-प्रचार-प्रेरक
स्वामी समर्पणानन्द जी सरस्वती

भाइयो और बहनो !

तीसरे वर्ष में प्रविष्ट होते हुए "जनज्ञान" आपका आशीर्वाद चाहता है। अंधेरे और निराशा में महर्षि दयानन्द के दिव्य स्वप्नों की पूर्ति का संकल्प लेकर 'जनज्ञान' प्रकाश प्रसार का यत्न कर रहा है।

हमारा कार्य आपके समक्ष है। हम योजनाएँ बनाने में नहीं, प्रभु के भरोसे चलते जाने एवं कर्म में विश्वास रखते हैं। हमारा काम उन सभी आर्य सैनिकों के लिए साधन जुटाना है जो महर्षि की लक्ष्य पूर्ति के लिए काम कर रहे हैं।

हम चल रहे हैं और चलते रहेंगे, आप अपना आशीर्वाद, स्नेह देते रहिए ताकि हम लक्ष्य की ओर तीव्रता से बढ़ते रहें।

तीसरे वर्ष में प्रवेश के समय हमारे पास २० से अधिक पुस्तकें प्रकाशन के लिए तैयार हैं। आपका सहयोग ही इन्हें प्रकाशित करा सकेगा। उदारता पूर्वक वेद-प्रचार के यज्ञ में अपनी आहुति डालिए।

'जनज्ञान' १० हज़ार छपे, यह हमारी इच्छा है। किन्तु इस की पूर्ति केवल आप ही कर सकते हैं। यत्न कीजिए कि आप अधिक से अधिक नए सदस्य बनाएँ। २० मई तक नए सदस्य बनाकर आप उपहार योजना द्वारा भी लाभ उठा सकते हैं।

प्रभु की शक्ति और आपके स्नेह बल पर हमने वेद-प्रकाश फैलाने का व्रत लिया है। आइए हमारे साथ, ताकि शीघ्र से शीघ्र वेद-पताका प्रत्येक मन और मस्तिष्क पर लहरा सके।

आपका स्नेह, आशीर्वाद ही
हमारी शक्ति है।

शुभ कामनाओं सहित
आपका
भारतेन्द्रनाथ
संचालक

नए वर्ष का उपहार

“जन-ज्ञान” अपने जीवन के तीसरे वर्ष में प्रवेश के उपलक्ष्य में नए सदस्यों को पुराने सदस्यों की ओर से ७-५० पैसे का साहित्य भेंट कर रहा है। आप केवल यह करें कि अपनी ओर से यह कूपन भरकर भेज दें और जिन्हें भी उपहार भेजना चाहते हैं उनके नाम व पते लिख दें। प्रत्येक उपहार के लिए केवल १०) हमें भेजें। हम आपकी ओर से ७-५० की पुस्तकें नए सदस्यों को भेज देंगे। इसके अतिरिक्त मार्च १९७१ तक के सभी अंक और विशेषांक भी उन्हें भेजते रहेंगे। उपहार रजिस्ट्री से भेजने के लिए ११) भेजें। क्योंकि मार्ग में खो जाने पर दुबारा उपहार नहीं भेजेंगे।

— व्यवस्थापक

◆

उपहार-कूपन

श्री व्यवस्थापक महोदय !

कृपया संलग्न पतों पर मेरी ओर से नए वर्ष का उपहार व एक वर्ष के लिए “जनज्ञान” भेज दें। सादी डाक/रजिस्ट्री से भेजें। मैं……रु० शुल्क के व……रु० रजिस्ट्री के लिए भेज रहा हूँ।…… पते भी संलग्न हैं—

यह सुविधा किसी भी स्थिति में
२० मई के बाद न
मिलेगी।

हस्ताक्षर……………
पूरा पता……………
ग्राहक संख्या……………

भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार
के संरक्षण-निर्देशन में
प्रकाशित

●

धरती के प्रयेक मानव के हृदय
मन्दिर पर "वेद-ज्ञान" की पावन
पताका फहराने के लिए
कृत संकल्प

आर्य जनता का

अपना

प्रतिनिधि प्रकाशन

"जन-ज्ञान"

(मासिक)
१५९७ हरध्यानसिह मार्ग
करोलवाग नई दिल्ली-५

●

फोन : ५६६६३९

●

सम्पादक
—राकेश रानी—

●

वार्षिक मूल्य १०)
एक प्रति ८० पैसे
विदेश में एक पौण्ड
वर्ष ३ अंक १

इस अंक के आकर्षण

●

१७—चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्य स्थापित कैसे हो ?
—भारतेन्द्रनाथ
२४—चार मुक्तक
—प्रकाशचन्द्र 'कविरत्न'
२५—स्वाभिमान (लेख)
—सत्यनारायण मि'श्र'
३०—प्रभु प्राप्ति के साधन
—विद्याभास्कर शास्त्री
३७—प्रभु मिलन की राह
—हरिशरण "सिद्धांतालंकार"
४९—अमृत पेय : गो दुग्ध
—गोविन्दजी
५३—मालती कुसुम : आजाद
—रामेश्वर
५९—महर्षि दयानन्द व साम्प्रदायिकता
—जयदेव एम० ए०
६७—पटपरिवर्तन (कहानी)
—राधेश्याम आर्य
७२—सत्यार्थप्रकाश
—सरस्वती पुत्र
७३—घड़े हुए पत्थर (कहानी)
—रमेश
८२—ब्रह्म-क्षात्र शक्ति जागें
—विक्रमकुमार
८५—नेकटाई बनाम यज्ञोपवीत
—दीनानाथ "सिद्धातलंकार
९७—पाठकों के पत्र : सम्मतियाँ
१०९—नारी जगत्
११७—शिशु संसार
१२१—आइए, सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें !

तीसरे वर्ष में प्रवेश के अवसर पर

"जन-ज्ञान"

के

आजीवन सदस्य बनिए

हमारे अनेक सदस्यों की मांग पर "जन-ज्ञान" का आजीवन सदस्यता शुल्क २५ मई १९७० तक

१५१) के स्थान पर १०१) स्वीकार किया जाएगा।

'जनज्ञान' की उन्नति और प्रगति, वैदिक साहित्य का महान् प्रकाशन, महर्षि दयानन्द का संदेश प्रसार

इच्छित है तो—

मेरी प्रार्थना स्वीकार कर आज ही १०१) भेज 'जनज्ञान के आजीवन सदस्य बनें

—भारतेन्द्र नाथ

सम्पादकीय

कल्याण मार्ग

राष्ट्र आज जिन तीन बीमारियों से ग्रस्त है, वे हैं—१-**नेता**, २-**भाषण** ३—**प्रस्ताव**।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इन बीमारियों ने देश की जड़ें खोखली कर दी हैं। हमारा शीर्षस्थ वर्ग इनके चक्र में ऐसा चकराया है, कि और सभी कुछ बिसरा दिया।

वस्तुतः आज जनता इन तीनों से बुरी तरह तंग आ चुकी है। प्रत्येक सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओं में यह बीमारियाँ घुन की तरह पहुँच चुकी हैं किसी को भी नहीं सूझता कि इन से छुटकारा कैसे मिले ?

नेता का काम है लोगों को बहकाना, जो जितना बड़ा झूठ बोल सकता है वह उतना बड़ा नेता है। जनता से दूर रहकर जनता के गीत गाना उसका पेशा है। गरीबों का प्रतिनिधि यह महलों में रहकर निर्धनता मिटाने की घोषणाएं करता हुआ अपनी गरीबी मिटाने में लगा है।

"भाषण" नेता का वह अस्त्र है जिससे वह सर्वनाश के सामान जुटा रहा है। चुनावों का अवसर हो या कोई सम्मेलन इस नेता नामधारी व्यक्तिसे भाषण सुनिए, लगेगा कोई देवता बोल रहा है। व्यवहार में वह क्या है यह जानने का समय ही किसके पास है ? भाषण ही अब राष्ट्र निर्माण का सर्वश्रेष्ठ साधनरह गया है।

और तीसरी बीमारी "प्रस्ताव"। यह हर विषय पर, हर स्थान पर, हर सभा में सदा तैयार। प्रस्ताव पास कर दिया और दायित्व समाप्त। समझ लिया कि काम हो गया।

हम इन तीनों बीमारियों की समूल समाप्ति राष्ट्र से चाहते हैं। यह जब तक रहेंगी, देश, धर्म, या समाज प्रगति न कर सकेगा। हमारी दृष्टि में इन तीनों के स्थान पर यह तीन प्रतिष्ठित होने चाहिएँ—

१ —सुधारक २—आचरण ३—संकल्प। आप प्रश्न कर सकते हैं कि इनमें और उनमें अन्तर क्या है ? आइए इस पर विचार करें—

नेता वह मार्ग बताता है जो जनता को बहकाने वाला हो। जनता की रुचि के अनुकूल हो, किन्तु सुधारक वह मार्ग बताता है जो जनता के लिए कल्याणकारी हो वह जनता की प्रशंसा नहीं चाहता अपितु जनता को रुष्ट कर

भी सत्य बात कहता है। नेता मालाएं फूलों की पहनता है, और सुधारक कांटों की। नेता की जयजयकार होती है और सुधारक को मिलती हैं गोलियाँ और गालियाँ। सुधारक जनहित में जनता के विचारों के विपरीत आवाज उठाता है और नेता जन-समूह की हाँ में हाँ मिलाता है।

सुधारक ऐसे भाषण नहीं देता कि हर ५ मिनट के बाद तालियाँ बजें, या उसे वोट मिलें या नोट मिलें। वह तो सच्ची बात कहता है, गालियाँ, ईंट, पत्थर खाता है और हृदय से उपदेश देता है।

वह भाषण देकर नहीं अपने 'कर्म' से, व्यवहार से जनता का मार्ग दर्शन करता है। कर्म के द्वारा ही वह उपदेश देता है। उसकी वाणी पर संयम होता है, वह जो करता है वही कहता है और नेता की कथनी करनी, में कभी मेल नहीं होता।

और प्रस्तावों के स्थान पर "संकल्प" ही उसका साधन होता है। हमें कोई कार्य करना है, तो हम व्रत लें, संकल्प लें, वाणी से नहीं, हृदय से तो फिर सफलता दूर नहीं रह सकती।

आइए, बुद्धि से विचारें और देश को इन तीनों बीमारियों से छुड़ा कर—उनके स्थान पर सुधारक, कर्म और संकल्प को प्रतिष्ठित करें। यही कल्याण मार्ग है।

अंगारे बरसाओ ! रक्षा के लिए

इतना कूड़ा करकट इकट्ठा हो चुका है, इतनी व्याधियां आज चारों ओर फैल चुकी हैं कि अब साधारण नहीं, असाधारण स्तर पर कार्य करना होगा। देश द्रोही और गुंडा तत्व जिस तरह अराजकता फैला रहे हैं, वह मौन होकर देखने की बात नहीं रह गयी है।

स्वार्थ की राजनीति ने देश की जड़ों पर कुठाराघात किया है। इसका प्रतिकार त्याग और बलिदान की राह पर चलकर ही संभव है। राष्ट्र की युवक शक्ति नग्नता, हिप्पीवाद और पश्चिमी के अंधानुकरण में लगी है। ऐसे में सहारा हैं केवल वे, जिन्हें आज भी देश से प्यार है।

इस प्यार की माँग है कि राष्ट्र के सर्वस्व की रक्षा के लिए, उठो अंगारे बरसाओ। देशद्रोही तत्वों से समझौता करने से काम न चलेगा, हमें फुंकारते विषधर का फन कुचलना होगा।

सोचने का नहीं कुछ करने का समय आ गया है। अपने आस पास झाँक कर देखो, अपने घरों में देखो और जो अशोभनीय है, जो विजातीय है, जो अभद्र है, जो राष्ट्र विरोधी है उसे समाप्त करने का उपाय खोजो।

विदेशी वेशभूषा, भाषा, व्यवहार और चिन्तन हमारी जड़ें खोखली कर रहा है, यह बढ़ रहा है, किन्तु अब जीवित रहना है, तो इसे जलाना ही होगा—

तीसरे वर्ष में प्रवेश

इस अंक के साथ 'जन-ज्ञान' तीसरे वर्ष में प्रविष्ट हो रहा है। इच्छा थी कि यह साप्ताहिक हो किन्तु अनेक प्रबुद्ध पाठकों ने मासिक को ही उन्नत और अच्छा बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। विदेशों से भी अनेक पत्र आए। अतः 'जन-ज्ञान' को मासिक रूप में जारी रखने की आवश्यकता अनुभव करते हुए जनता का आदेश सिर माथे पर।

हाँ प्रचार की दृष्टि से नया साप्ताहिक संस्करण निकालने का हमारा संकाल्प है। हम बहुत शीघ्र विचार कर इस विषय में सूचित करेंगे। 'जन-ज्ञान' मासिक बौद्धिक दृष्टि से निकाला जाएगा।

प्रभु हमें शक्ति दो, भाई और बहन आशीर्वाद दें कि हम मंगलमय प्रभु की अमृत वाणी का संदेश धरती पर फैलाते रहें। —**राकेश रानी**

वैदिक सङ्गीत

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ।सामवेद १।१ १

यज्ञ ही मेरे हृदय का, प्राण जीवन गीत है।
यज्ञ ही है ज्योति जग की, यज्ञ ही संगीत है।
यज्ञ ही है प्रेरणा का पुंज, दर्शक मार्ग का,
ज्ञान दाता, स्वार्थ नाशक, त्याग प्रेरक भावका॥
दो हमें वह शक्ति भगवान्! यज्ञ हम करते रहें।
रात दिन तव गीत गाकर, पुण्य पथ बढ़ते रहें।
"अग्नि" जागे वह हृदय में, पाप पथ दलते रहें।
तुम विराजो नाथ मन में, भाव शुभ पलते रहें।
कामना है बस यही, प्रभु! ना तुझे मैं भूल पाऊँ,
राह पर तेरी चलूँ मैं, दीप्त हो कर जगमगाऊँ,

—**भारतेन्द्र नाथ**

हम क्या कर रहे हैं ?

जन-ज्ञान मासिक ने

अपने प्रथम वर्ष में ४ विशेषांक भेंट किये

१—श्रद्धांजलि अंक
२—अध्यात्म अंक
३—ऋषि जीवन
४—क्रांतिकारी दयानन्द

जिनका मूल्य था ४.७५ पैसे : वार्षिक शुल्क लिया ६)

द्वितीय वर्ष में ५ विशेषांक भेंट किए

१—मां गायत्री
२—वेद-ज्योति
३—वैदिक गीता
४—वैदिक अध्यात्म ज्योति
५—योग जीवन

जिनका मूल्य था ६.७५ पैसे। वार्षिक शुल्क लिया ८) और १०)

इनके अतिरिक्त ईसाई निरोध के ग्यारह ट्रैक्ट लाखों की संख्या में छापे व बाँटें

वैदिक विचारधारा प्रसार के लिए ३२ पुस्तकें हजारों की संख्या में बाँटीं।

हमारे पास धन न था न है, केवल प्रभु के भरोसे और आर्य जनता के आशीर्वाद से जो कार्य किया वह प्रत्यक्ष है।

हम योजनाओं में नहीं, कार्य में विश्वास रखते हैं

हमारा कार्य देख कर जिन्हें हमारी कार्यक्षमता और भावना पर विश्वास हो

हम केवल उन्हीं ऋषि भक्तों के सम्मुख भिक्षापात्र लेकर उपस्थित हैं। आप जितना देंगे, हम उतना कार्य करते जायेंगे।

आशीर्वाद भी दीजिए और स्नेह भी

अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशन के लिए आप के सहयोग की राह देख रहे हैं

—राकेश रानी
सम्पादक

निम्न ग्रंथ प्रकाशन के लिए आपके सहयोग की प्रतीक्षा में हैं

१. **वेद और बाइबिल**—इस अनुपम पुस्तक में आमने-सामने एक ही विषय पर वेद और बाइबिल प्रस्तुत किए गए हैं, वेद मंत्रों के अर्थ भी हैं। पुस्तक कितनी उपयोगी होगी इसकी कल्पना ही करें—पृष्ठ हैं लगभग १००। इसके प्रकाशन के लिए कम से कम १०००) चाहिए।

२. The Light of the Vedes—आर्य समाज के एक महान् विद्वान द्वारा ५०० के लगभग वेद मंत्रों का अंग्रेजी अनुवाद बिल्कुल तैयार है। विदेशों में वेद की माँग पूरी करने का यह आरम्भिक साधन होगा। प्रकाशन के लिए २०००) चाहिएं—पृष्ठ होंगे २००।

३. **वैदिक सिद्धान्त**—आर्य समाज के धुरन्धर विद्वान् और साराजीवन आर्य समाज के लिए अर्पित करने वाले विद्वान् की अमर कृति। पृष्ठ २००। धन चहिए २०००)

४. **वैदिक-धर्म-परिचय**—आर्य समाज के विचारक विद्वान और नेता एक संसद सदस्य द्वारा लिखित ग्रंथ प्रेस में जाने के लिये बिल्कुल तैयार है। नयी शैली और नये ढंग में पुस्तक अनुपम है। धन चाहिये २०००)

५. **५२ वेद मंत्रों की व्याख्या**—४०० पृष्ठों के लगभग तैयार है। हम इसे वेद प्रचार सप्ताह पर २५००० छापना चाहते हैं। लागत से भी कम में देना चाहते हैं। घर-घर पहुँचाना चाहते हैं। घाटा उठाने के लिये धन चाहिये ५०००)

६. गायत्री शतक

७. Life of Swmi Dayansn

ऐसे ही लगभग २० ग्रंथ तैयार हैं। प्रभु का आशीर्वाद और ऋषि दयानन्द के सैनिकों का प्यार मिला तो १९७१ के आरम्भ तक सभी छपेंगे और आर्य समाज का गौरव बढ़ेगा।

भाइयो और बहनो!

यदि आपका कर्तव्य आपको प्रेरणा दे सके तो वैदिक-ज्योति प्रसार के लिये भूखे रहकर भी साधन जुटाओ।

आपकी शक्ति ही हमारा बल है—

विनीत
भारतेन्द्र नाथ
संचालक

जन-ज्ञान-प्रकाशन
१५९७, हरध्यानसिंह रोड, नई दिल्ली-५

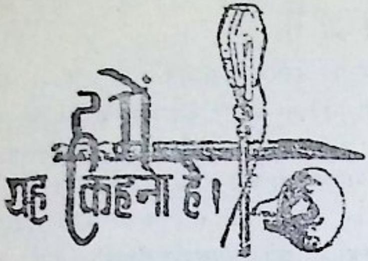

विजय वरो !

देश में बढ़ती देशद्रोही शक्तियों से संघर्ष करो और उन्हें समाप्त कर दो। माँ की स्वतन्त्रता, गौरव और संस्कृति पर प्रहार करने वाला कोई भी हो, वह हमारा शत्रु है, हम उसकी उपेक्षा कर जीवित नहीं रह सकते।

—हमारी प्रथम शत्रु हैं वे विदेशी शक्तियाँ, जो हमारी स्वतंत्रता को समाप्त करने हेतु कटिबद्ध हैं।

—हमारे दूसरे शत्रु हैं वे व्यक्ति, जिनकी निष्ठा भारत में रहते हुए भी अन्य देशों के प्रति भारत से अधिक है।

—हमारे तीसरे शत्रु हैं वे विचार, जिन्होंने हमें अपने धर्म संस्कृति और विचारों से घृणा करना सिखाया है।

—और हमारी चौथी शत्रु हैं वे सामाजिक बुराइयाँ जिन्होंने हमारी प्रगति में बाधा खड़ी कर दी है। सांप्रदायिकता, प्रांतीयता, जातीयता, अस्पृश्यता आदि दुर्गुण इसी के अन्तर्गत आते हैं।

—और पाँचवाँ शत्रु है वह विचार धारा, जिसने हमें नपुंसक, स्वार्थी, और निकम्मा बना दिया है।

इन पाँचों शत्रुओं ने मिलकर गत २२ वर्षों में हमारे देश को जलाया है। भौतिक उन्नति भले ही कहीं दीखे, किन्तु स्वतन्त्रता का वरदान कहीं नहीं दीख रहा, अभिशाप सर्वत्र छाया है।

आज निराशा का नहीं, संघर्ष का अवसर है। हमें वह सब कुछ समाप्त करना है, जिसने भारत के वास्तविक स्वरूप को समाप्त कर दिया है। हम अपने घर-परिवार में और अपने में झाँककर देखें तो स्पष्ट दीखेगा कि हम कितने बड़े अपराधी बन चुके हैं।

२२ वर्ष के पापों का प्रायश्चित हमें करना है और बचाना है प्रत्येक मूल्य

पर अपनी स्वतन्त्रता, संस्कृति और धर्म को। यह काम नारों से नहीं, संघर्ष से होगा, आत्म निरीक्षण से होगा…।

सब से पहले अपने से आरम्भ कीजिए, आप पैंट पहनते हैं, टाई बांधते हैं। घर में बच्चों से मम्मी, डेडी, कहलवाते हैं? आखिर क्यों…क्या यह विदेशी दासता के चिह्न नहीं?

यज्ञोपवीत फेंक कर टाई बांध क्या आप अपने को नीचे नहीं गिरा रहे हैं? धोती क्यों छोड़ी? समय के प्रवाह से…यही कहेंगे न, तो हमारा कहना है, कि यह प्रवाह न बदला तो हम मिट जाएँगे। ८०० साल की गुलामी हमें नहीं मार सकी। यह प्रवाह मार रहा है।

हमने धर्म की वेदी पर बड़े बड़ों को पैंट पहनकर भाषण देते देखा है? क्या आप में साहस है कि ऐसे व्यक्तियों को वेदी पर खड़ा न होने दें। भारतीय संस्कृति के ठेकेदार जब बुशर्ट पैंट पहनकर उपदेश देते हैं, तो ऐसा लगता है कि कोई लाश पर खड़ा अट्टहास कर रहा है।

संध्या गयी, ईश्वर का नाम गया, ईमानदारी गयी वेश-भूषा गयी, तो आखिर बचा क्या है जिस पर हम अभिमान करें? एक ईसाई में और हम में क्या अन्तर रहा गया है?

पैन्टें जलाइये

हम समझते हैं कि जिस तरह गाँधी जी ने स्वराज्य आन्दोलन आरम्भ करते हुए विदेशी वस्त्रों की होली जलायी थी आज उसी तरह १—विदेशी वेश-भूषा २—विदेशी भाषा और संस्कृति को हमें घरों से निकाल उन्हें जलाना होगा। पैन्ट, टाई और समस्त विदेशी ढंगों को हमें मिटाना होगा। आपसी व्यवहार में विदेशी भाषा का प्रयोग बन्द करना होगा।

शराब भी बढ़ रही है और गुंडा गर्दी भी, अँग्रेजियत भी बढ़ रही है और विदेशियत भी। घट रही है, जल रही है, केवल भारतीयता।

यह जलती हुई भारत माँ अपने करुण स्वर में अपने उन बेटों को पुकार रही है जो उसके सच्चे बेटे हों सचमुच आज उन जीवित शहीदों की आवश्यकता है, जो 'माँ' को बचाने के लिए संघर्ष करें। कोई समझौता नहीं, बस हमें, विदेशी विचारों, भावों, षड़यन्त्रों की समाप्ति के लिए युद्ध घोषणा करनी है। भारत माँ के वीर सपूतो!

आओ संघर्ष की तैयारी कर क्रांति का बिगुल बजाएं। हम आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, कार्य आरम्भ करो।

वेदों का डंका घर-घर में आज बजाने कौन चलेगा ?

चारों ओर दृष्टि दौड़ रही हैं, समस्याएँ उभर रही हैं, गति विधियाँ सामने आ रही हैं और अनुभव हो रहा है कि हमारा परम धर्म **परम उपेक्षित** हो गया। दुर्भाग्य ने मन और मस्तिष्क को ऐसा बदला है, कि हम 'वेद' को सर्वथा भूला कर मनमागे ढंग से अपनी योजनाएँ बना रहे हैं।

क्रांति का वह स्वप्न जिसका बीजारोपण हरिद्वार में पाखण्ड-खण्डिनी पताका लहरा कर महर्षि ने देखा था, केवल स्वप्न रह गया।

यह क्यों हुआ, इस के विश्लेषण का समय नहीं, हाँ, इतना निश्चित है कि हमारी योजना में आज न वेद प्रचार को स्थान है न पाखण्ड-खण्डन को, हम तो और अनेक महत्वपूर्ण (?) समस्याओं में उलझ-गए और जो कार्य दायित्व ऋषि ने सौंपा था उसे भूल गए।

हम इस विस्मृति को समाप्त कर समस्त दयानन्द का नाम लेने वालों को वेद-प्रचार में लगाना चाहते हैं। क्रांति का नारा लगाने वाले उत्साही युवकों से हम कहना चाहते हैं कि बात बातों से बनने वाली नहीं अब तो विजय और क्रांति के लिए सर्वत्र पाखण्ड-खण्डिनी पताका लहरानी होगी।

बार-बार आर्य जन पूछते हैं कि वे क्या करें—हमारा उत्तर तो एक, अपरिवर्तनशील केवल एक है कि—

वह करो जो ऋषि दयानन्द ने कहा था, वेद का प्रचार और पाखण्डों का नाश करो।

भारत के हर घर आंगन में वेद का डंका बजाने का यत्न करो। पाखण्डी जहाँ भी दीखें वहाँ उन पर प्रबल प्रहार करो।

हम जानते हैं कि आप में यह साहस नहीं कि यह कह सकें कि हम गलत कह रहे हैं फिर भी आप इस राह पर नहीं चलेंगे।

कारण…कारण कटु है फिर भी लिख देते हैं, कारण है यह कि आपको ऋषि दयानन्द के प्रति श्रद्धा है न प्यार। आप केवल स्वयं को छल रहे हैं और अपने स्वार्थ साधन का सहारा ले रहे हैं। आपके सारे नारे, कार्यक्रम दिखावा हैं और अपने स्वार्थ का सामान जुटा रहे है। इस प्रपंच ने ही ऋषि के महान् स्वप्नों का अधूरा रखा है।

पर अब ऐसे काम नहीं चलेगा, आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य को, उपदेशक नेता और कार्यकर्ता को वेद प्रचार का संकल्प लेना होगा। अन्य नेतागिरी के लटके छोड़कर एक हाथ में वेद और एक में पाखण्ड खण्डनी पताका संभालनी होगी।

जो यह नहीं कर सकता वह ऋषि दयानन्द का अनुयायी नहीं। आर्य जनता अब जाग रही है और उसने अपने क्षेत्र में जागकर महर्षि दयानन्द के महान् दिव्य संदेश को प्रसारित करने का संकल्प लिया है। वस्तुतः भविष्य निर्माण की सुदृढ़ आधार शिला के लिए उस, अग्नि' की आवश्यकता हैं जो अंधविश्वास और अज्ञान के प्रत्येक अंग को जला सके।

हमारे शरीर का अंत निश्चित है यह देह कब छोड़नी पड़े, कौन जानता हैं ? फिर अनिश्चित स्वार्थों के लिए प्रभु की राह को क्यों उजाड़ें ? धरती नरक क्यों बनाएँ !

देश के ५० करोड़ व्यक्तियों तक वेद का संदेश पहुँचाना हमारा दायित्व है। कर्म हमें आवाहन कर रहा है, विजय के लिए। विजय का अर्थ है ३० करोड़ तक अपनी बात पहुँचाना।

जिन दिन भारत के ३० करोड़ नागरिक स्वार्थ, मूर्तिपूजा, आदि प्राँतीयता वादछोड़ प्रभु के पुत्र बन वेद के गीत गाएँगे उस, दिन देश में वेद पताका लहराएगी। क्या आप इस दिन के लिए खाद बन कर मिटने को तैयार हैं ? वेद और दयानन्द को उन जीवित शहीदों की आवश्यकता है, जो इसलिए समाप्त होजाएँ कि आने वाली पीढ़ी स्वर्ग में रह सके।

काश, कि दो चार व्यक्ति भी दयानन्द के दिव्य स्वप्नों के लिए जीवन दे सकते ?

५१ वर्ष बाद

३० मार्च १९१९ और ३० मार्च १९७०। ५१ वर्ष में दृश्य कितना बदल गया। उस दिन भारत के वीर संन्यासी ने विदेशी संगीनों के आगे सीना खोल दिया था और आज राष्ट्र का सर्वोपरि व्यक्ति राष्ट्रपति महान् संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा था।

वही स्थान, वही सूरज, वही हवा और वही शहर, पर सब कुछ बदला हुआ। यह परिवर्तन जीवन का प्रतीक था, गौरव की भीनी-भीनी गंध हमारे मस्तिष्क को छू रही थी और हम देख रहे थे अपने उस अतीत को, जब आर्य संन्यासी के चरणों में गांधी झुकता था, आज राष्ट्रपति श्रद्धांजलि दे रहा था।

वह रूप, वह मूर्ति, वह भाव, वह साधना जो श्रद्धा और आनन्द से पूर्ण थी धन्य है। प्रतिमा लगा दी गयी, कांस्प प्रतिमा, पर हमें जीवित श्रद्धा चाहिए, जन-मानस में आनन्द का स्रोत बहाने के लिए श्रद्धा का आधार चाहिए।

प्रभु, हमें बल दो कि हम श्रद्धानन्द के स्वरूप को जीवित करें, शुद्धि का मंत्र और सत्य का मार्ग ही श्रद्धानन्द की असली प्रतिमा है। ५१ वर्ष बाद इसकी प्राण-प्रतिष्ठा प्रत्येक आर्य के अन्तर में हो, ऐसी प्रेरणा प्रभु करें, ताकि सर्वत्र संन्यासी की विमल पताका लहराए।

७ मार्च : ४ मार्च

इस वर्ष ४-७ मार्च को ३ व्यक्तियों ने अपने-अपने ढंग से संन्यास ग्रहण किया। हरयाणा के हृदय सम्राट्, परखे तपस्वी, साधक, संत, महात्मा आचार्य भगवान देव ने बिना निकट के मित्रों को भी बताए मौन भाव से ४ मार्च को दीनानगर में स्वामी सर्वानन्द जी से संन्यास ग्रहण किया और वे स्वामी ओमानन्द बन गए। आदर्श व्यक्ति का यह आदर्श कार्य श्रद्धा और आदर उत्पन्न कर रहा था। हमें ५ मार्च को जब अप्रत्याशित रूपसे यह समाचार मिला तो सचमुच हमारा मन उनके प्रति नत मस्तक हो गया। प्रभु उन्हें स्वस्थ-सबल दीर्घायु प्रदान करें……आज ऐसे व्यक्ति से मार्ग दर्शन के लिए राष्ट्र उत्सुक है।

७ मार्च को अभूतपूर्व समारोह में २ युवकों ने अग्निवेश, इन्द्रवेश के नए नाम से संन्यास आश्रम में प्रवेश किया। प्रो० श्यामराव व ब्र० इन्द्रदेव के नाम से गत २ वर्ष से यह युवक हरयाणा में आर्य युवक परिषद् के मंत्री व प्रधान रूप में कार्य कर रहे हैं।

संन्यास आश्रम में दीक्षित हो यह दोनों व्यक्ति सच्चे आर्य संन्यासी की भाँति राष्ट्र का मार्ग दर्शन करें, यह हमारी हार्दिक कामना है। हम उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब आर्य संन्यासी के रूप में यह युगल जोड़ी ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में 'वेद' संदेश प्रसार का संकल्प लेगी।

प्रभु इन्हें शक्ति, प्रेरणा और मेधा प्रदान करें। सत्य, असत्य, धर्म-अधर्म और समय की मांग को यह पहचान भौतिक मोह बंधनों को तोड़, धर्म की स्थापना हेतु, 'वेद-ज्योति' संभाल सच्चे सन्यासी बनें। 'जनज्ञान' हृदय से इन्हें महर्षि दयानन्द की राह पर चलने का आशीर्वाद देता है।

नैपाल : हरिद्वार : विकासनगर

६ मार्च को हम दिल्ली से चलकर ७ की प्रातः कानपुर पहुँचे। कानपुर में आर्य समाज के आधार स्तंभ आर्य विद्वान् पं० लक्ष्मण कुमार जी शास्त्री का स्नेह-आशीर्वाद सदा ही साथ रहा है। उनसे मिलकर ऐसा प्रतीत होता है कि नयी शक्ति प्राप्त हुयी। आर्य समाज सीसामऊ के मंत्री श्री गौतम जी

ने समाज की ओर से ३० प्रमुख व्यक्तियों को जनज्ञान भेजने के लिए आदेश दिया। उनका यह प्रयास अनुकरणीय है। इसी भाँति देश के सभी आर्य समाज यदि अपने क्षेत्र के प्रमुख व्यक्तियों तक वेद संदेश पहुँचाएँ तो सफलता दूर नहीं रह सकती।

उत्तर प्रदेश की आर्य शक्ति के प्रेरणा स्रोत पं० विद्याधर जी के दर्शन भी डी० ए० वी० कालिज में किए। आपका आशीर्वाद तो १५ वर्ष से हमारे साथ है। साहित्य प्रसार में आपकी तुलना नहीं। आपने अत्यन्त प्रेम से हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा की। २५० (Teachings of Swami Dayananda) बांटने हेतु मंगायीं और २५ प्रतियाँ जनज्ञान की भेजते रहने का आदेश दिया। इसी बीच में दैनिक जागरण के श्रीनरेन्द्र श्रीमोहनजी व जयचन्द्रजी आर्य से भेंट हुयी। आपने १०१) दिया। आपका स्नेह भी सदा अयाचित हमें प्राप्त होता रहा है।

कुल ८—१० घंटे के कानपुर प्रवास में हमें जो स्नेह, प्रेरणा, आशीर्वाद मिला, उससे हमें और आगे सफलता से बढ़ने का बल मिला है। हम चाहते हैं कि यह प्यार-दुलार, अपनापन सदा इसी भाँति मिलता रहे। हम खाद बनकर "आर्यसमाज वृक्ष" की जड़ों में लगें, ताकि वृक्ष फले और फूले।

७ की शाम ६-१५ पर विद्वद्वर्य भाई लक्ष्मणकुमार जी और उनकी आदर्श पत्नी श्रीमती शशिकान्ता जी ने स्नेह पूर्वक हमें स्टेशन पर नानपारा के लिए गाड़ी में बिठा दिया और हम ८ की प्रात: ९ बजे आर्यसमाज नानपारा में पहुँचे।

नानपारा एक मुस्लिम बहुल कस्बा है। यहाँ के आर्य बन्धु सदा से ही उत्साही और कर्मठ रहे हैं। पिछले १५ वर्षों से निरन्तर उनसे मिलने की इच्छा थी जो इस वर्ष पूरी हुई। यहाँ के सभी अधिकारी व सभासद आदर्श हैं। प्रचार और निरन्तर प्रचार ही उनका लक्ष्य है। उत्सव में शास्त्रार्थ महारथी पं० शांतिप्रकाशजी भी पधारे हुए थे। उनसे मिलकर पुरानी स्मृतियाँ नवीन हो गयीं। दोनों दिन अच्छा प्रचार हुआ। श्री बच्छराज जी द्विवेदी ने नानपारा के आस-पास का क्षेत्र उत्साह पूर्वक दिखाया। वे योग्य अध्यापक और अनुभवी लेखक व दृढ़ आर्य हैं।

इसी बीच कुछ समय के लिए हमें नैपाल की सीमा के भीतर भी जाने का अवसर मिला। नैपालगंज कस्बे में जो भारत की सीमा के ३ मील के बाद स्थित है—हमने नैपाल की झलक देखी। वागेश्वरी देवी के मन्दिर में वलि भी देखी और चीन के सामान से भरा बाज़ार भी देखा। भारत की सैंकड़ों मील लम्बी नैपाल सीमा की असुरक्षा को भी हमने अनुभव किया और

सीमा पर स्थित ईसाई A. G. Mission भी देखा। यहाँ २०-२५ अनाथ बच्चे पादरी M. Time के संरक्षण में ईसाई बन पोषित हो रहे हैं। भगवान की कृपा से भारत बचा हुआ है अन्यथा शासन तो बस स्वार्थ की पूर्ति में सब कर्तव्य भूल गया है।

१० की प्रातः आर्यसमाज नानपारा के अधिकारियों ने स्टेशन पर भाव भीनी विदायी दी। उनके स्वागत, स्नेह, सहयोग के लिए हम उनके अभारी हैं। हमने उन्हें प्रचार में हर तरह के सहयोग का आश्वासन दिया। वस्तुतः नानपारा में बिताए २ दिन हमारे जीवन में अविस्मरणीय रहेंगे।

१० की मध्याह्न हम लखनऊ पहुँचे। सभा भवन का निर्माण जोरों पर था, सभा के मंत्री श्री प्रेमचन्द्र जी से भेंट हुयी। हमने उन्हें अपना साहित्य भेंट दिया। उनके मन में उत्तर प्रदेश में आर्यसमाज को अत्यन्त शक्तिशाली देखने की इच्छा है। प्रभु कृपा करें कि हम सभी आपसी विवादों से ऊपर उठकर महर्षि दयानन्द के महान् लक्ष्य की पूर्ति हेतु अग्रसर हो सकें।

१० की रात को लखनऊ मेल से हम दिल्ली ११ की प्रातः आ गए और १२ की प्रातः फिर हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया।

इस बार हरिद्वार में स्वामी श्रद्धानन्द की फुलवारी को उजड़ा देखा। महाविद्यालय ज्वालापुर का फीका उत्सव, निराशापूर्ण वातावरण देख मन को भारी धक्का लगा। पता नहीं हमारा मस्तिष्क कहाँ गिरवी रख दिया गया है कि हम अपना भला-बुरा भी नहीं सोच पा रहे।

१३ अप्रैल को ऋषिकेश २ घंटे के लिए गये। स्वामी योगेश्वरानन्द जी से मिले। फिर देहरादून पहुँचे और फिर विकासनगर। श्रद्धानन्द साल्वेशन मिशन का नाम सुना था कार्य देखने की इच्छा थी। पर वहाँ जाकर तो हैरानी हुयी कि कुछ था ही नहीं। न कार्यालय न कागज न फाइल। कल्पना में गृष्टि का उदाहरण सामने था। ऐसी छलना भरीयोजनाएँ ही हमें रसातल में ले जा रही हैं।

विकासनगर में आर्यसमाज का भव्य मन्दिर है। उत्साही कार्यकर्ताओं की भी वहाँ कमी नहीं। श्री आनन्दकुमार जी उस क्षेत्र में आर्यसमाज के प्राण हैं। उनके पास बिताए ५-६ घंटे हमें नहीं भूलेंगे। यमुना घाटी पर भारी विकास योजनाएँ चल रही हैं। आवश्यकता है कि इस क्षेत्र में वैदिक धर्म की पताका लहरायी जाए।

अपनी इस यात्रा में हम जहाँ भी गए सर्वत्र 'जनज्ञान' पहले मिला। हमने अनुभव किया कि आर्य जनता का प्यार और दुलार निःसंकोच इसे मिल रहा है। प्रभु कृपा करें कि हम जन मानस के अन्तर की भावनाओं के अनुरूप सदा कार्य करते रह सकें। कभी प्रलोभनों में हमारे कदम डगमगाएँ नहीं, हम मर भले ही जाएँ पर कभी झुकें नहीं। **—भारतेन्द्रनाथ**

मार्ग दर्शन

भारतेन्द्र नाथ

चक्रवर्ती "वैदिक-साम्राज्य" स्थापित होना चाहिए........

किन्तु वह कैसे होगा?

● इस प्रश्न पर नारों से नहीं, होश के साथ विचार की आवश्यकता है। नारे लगाकर जनता को बहकाया जा सकता है किन्तु "आर्य-राज्य" स्थापित नहीं किया जा सकता— ●

●●●

"आर्य-समाज" एक सार्वभौम संगठन है। इसकी स्थापना महर्षि दयानन्द सरस्वती ने की थी। इसके अपने नियम हैं, विधान है। महर्षि के ग्रंथ विद्यमान हैं, जो प्रत्येक विषय में हमारा मार्ग-दर्शन करते रहते हैं।

हमने बचपन से ही, शिक्षा आरम्भ करने के साथ-साथ ही 'आर्य-समाज' को समझने का और संस्थापक के लक्ष्य और उद्देश्य को अपने जीवन में आत्मसात करने का यत्न किया है। निरन्तर अध्ययन करने के पश्चात् हमने जो जाना है वह जानकर आर्यसमाज के प्रति हमारी श्रद्धा निष्ठा और विश्वास गहरे और गहरे होते गए हैं। हमने आर्यसमाज को जिस रूप में देखा है वह रूप जब भी प्रसिद्धतम विरोधी विद्वानों के सम्मुख रखा तो वे भी इसे अस्वीकार नहीं कर

सके। हमारा यह विश्वास है कि संसार के किसी भी व्यक्ति को जिसका मस्तिष्क विकृत न हुआ हो यदि आर्यसमाज के स्वरूप से परिचित कराया जाए तो वह नत मस्तक होकर इसे स्वीकार करेगा।

आर्यसमाज का यह उज्वल महान् रूप ही हमारी अटूट निष्ठा का आधार है।

हम आर्यसमाज को उस अग्नि के रूप में देखते हैं जो मनुष्य मात्र के समस्त दुःख और कष्टों को जलाने-मिटाने के लिए महर्षि दयानन्द ने प्रज्वलित की थी। संस्था भवन और प्रदर्शनात्मक रूप में आर्यसमाज का स्वरूप कभी हमारे आकर्षण का केन्द्र नहीं रहा, हम तो उसी यज्ञाग्नि रूप आर्यसमाज के पुजारी हैं जो मनुष्य को दुःख, कष्ट और चिन्ता के मार्ग से हटाकर सुख, शान्ति और आनन्द की राह पर चलाना चाहता है।

आवश्यक और ज्वलन्त प्रश्न पर हम यह लेख छाप रहे हैं। किन्तु सम्पादक का इससे सहमत होना आवश्यक नहीं। हम इस विषय पर लेखक के विचारों से असहमत लेखों का भी स्वागत करेंगे।

प्रश्न बड़ा सीधा है कि "पहले आर्य राज्य हो और तब वैदिक विचारधारा फैले" या वैदिक विचारधारा के प्रसार से जब सभी आर्य होंगे तो आर्य राज्य स्वतः हो जाएगा···विषय को स्पष्ट समझ अपने विचार भेजिए। —सम्पादक

आर्यसमाज का लक्ष्य है—

—संसार का उपकार करना, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक, और सामाजिक उन्नति करना।

और आर्यसमाज के सदस्यों का परम धर्म है—

वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना।

वेद के आधार पर और महर्षि के मंतव्यों के अनुसार धरती पर वैदिक राज्य स्थापित करना हमारा उद्देश्य है। साथ ही हम प्रजातन्त्र पद्धति में विश्वास रखते हैं।

प्रजातन्त्र का पहला पाठ है कि—"अयोग्य प्रजा द्वारा निर्मित सरकार योग्य और योग्य प्रजा द्वारा निर्मित सरकार अयोग्य नहीं हो सकती।"

इस पृष्ठ भूमि में यदि आप चिन्तन करेंगे तो स्पष्ट होगा कि "वैदिक चक्रवर्ती आर्य साम्राज्य की स्थापना के लिए आवश्यक है कि धरती के प्रत्येक मनुष्य की विचारधारा 'वेद' के आधार पर हो।

किन्तु यह परमाश्चर्य की बात है कि वैदिक राज्य स्थापना का नारा लगाने वाले नीचे से नहीं ऊपर से वैदिक साम्राज्य लाना चाहते हैं।

हमारा पक्ष है कि—

संसार की विचारधारा बदलो, स्वयं आर्य राज्य सर्वत्र बन जाएँगे।

उनका पक्ष है कि—

पहले "आर्य राज्य" स्थापित हो, तो उसके द्वारा आर्य विचारधारा फैलाएँगे।

यह दोनों पक्ष किसी व्याख्या की अपेक्षा नहीं रखते। भाव अत्यन्त स्पष्ट हैं।

दूसरा पक्ष अत्यन्त सरल, लुभावना प्रतीत होता है। आर्य राज्य स्थापना के नाम पर जनता को बहकाया जा सकता है, लुभाया जा सकता है, नेतागिरी भी मिल सकती है, मालाएँ भी पड़ सकती हैं, धन भी बरस सकता है किन्तु आर्य राज्य स्थापित नहीं हो सकता।

हमारी दृष्टि में—

आर्य राज्य की स्थापना के लिए लगाया गया नारा आर्यसमाज को शक्ति देने के स्थान पर उसकी जड़ें खोखली कर रहा है। वे वीर युवक जो सर्वस्व त्यागकर इस नारे के प्रभाव में जीवन अर्पित करते हैं, आर्यसमाज की थाती हैं किन्तु राज्य स्थापना की मृग मरीचिका में वे नष्ट हो जाते हैं—जीवन व्यर्थ जाता है।

आवश्यकता इस बात की थी कि ये युवक अपना जीवन "वेद-प्रचार" के लिए अर्पित करते। ग्राम-ग्राम नगर-नगर जाकर वेद-ज्योति फैलाते। मूर्ति पूजा, अंधविश्वास, जातिवाद, प्रान्तीयता और समस्त अज्ञान को मिटाने का संकल्प लेते। किन्तु इस मार्ग में चकाचौंध नहीं, चमक नहीं. यह तो त्याग और बलिदान का मार्ग है। इस पर चलना तो तलवार की धार पर चलना है। त्याग का ढोंग करना जितना आसान है, सचमुच का त्याग उतना ही कठिन है।

हमारा सीधा प्रश्न है कि जो "आर्य राज्य" की स्थापना का नारा लगा रहे हैं वे बताएँ कि आर्य राज्य कैसे स्थापित करेंगे ? भारत की यह जनता, जो मूर्ति पूजा और अंधविश्वासों से ग्रस्त है, यह आर्य नामधारी नेता जो

किसी भी दृष्टि से आर्य नहीं, वेद-प्रचार की जिन्हें चिन्ता नहीं, जातीय संकीर्णताओं से जो ग्रस्त हैं, आपस की दलबन्दी जो छोड़ नहीं सकते, वे आर्य राज्य स्थापित करेंगे ?

मुकदमे बाजी और आपसमें लड़ना ही जिन्हें इष्ट है वे "आर्य-राज्य" स्थापित करेंगे ? आत्म विश्वास से शून्य, धन के लोभी, व्यापारी वृत्ति के यह आर्य नामधारी आर्य राज्य स्थापित करेंगे ?

एक क्षण को कल्पना कर भी लें कि जादू के जोर से सारे आर्य नेता संसद् में पहुँच गए और राष्ट्रपति से लेकर संसद् सदस्य भी आर्य नेता हो गए। तो भी वह संसद् क्या आर्य संसद् होगी ?

इससे भी अधिक सीधा और खुला प्रश्न है कि आप आर्य नामधारी व्यक्तियों का शासन चाहते हैं या आर्य विचारधारा से ओत-प्रोत व्यक्तियों का। यदि पहली बात है तो आर्य नामधारी व्यक्तियों का शासन "आर्य-राज्य" नहीं हो सकता। आर्य-राज्य तो वही होगा जब प्रजा का प्रत्येक वर्ग (बहुमत) वैदिक विचारधारा के अनुसार जीवन यापन करेगा।

हमारी दृष्टि में आज राष्ट्र को और विश्व को ऐसे वीर आर्य युवकों की आवश्यकता है जो भावी चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्य की स्थापना के लिए नींव के पत्थर बनकर मर सकें। भाषण, और नेतृत्व की भूख से स्वार्थ साधन हो सकते हैं, महर्षि दयानन्द का लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता।

आज तक राजनीति के प्रलोभन ने आर्यसमाज की शक्ति का दुरुपयोग किया है और आज भी हमारी बहुमूल्य शक्ति राज्य स्थापना के नारों से नष्ट हो रही है। संसार की बात थोड़ी देर के लिए छोड़ भी दें तो यह स्पष्ट सत्य है कि आज हमारा देश जो ऋषि-मुनियों का राम-कृष्ण, शिवा-प्रताप, और देव दयानन्द की पुण्य भूमि है, नष्ट प्रायः हो रहा है। ईसाइयत, कम्यूनिज्म और भोगवाद के प्रवाह ने हमारा सर्वस्व मिटाने की ठानी है। चारों ओर आग लगी है और हम देख रहे हैं कि दयानन्द के अनुयायी सोए पड़े हैं। जो जाग रहे हैं उन्हें राजनीति की छलना ने छल लिया है।

गया समय फिर नहीं आएगा। भारत मिट गया तो ऋषि दयानन्द का लक्ष्य कौन पूरा करेगा ? समझ नहीं आता कि आखिर हमें हो क्या गया है।

हमारी बुद्धि, हमारा बल भ्रमित क्यों हो गया है ? हमारी दृष्टि में आज आवश्यकता है देश को उन नौजवानों की, जो ईसाइयत से टकरा सकें, कम्यूनिज्म के सामने दीवार बनकर जो खड़े हों, भोगवादी चकाचौंध, पश्चिम की नग्नता को जला सकें।

मातृ-भूमि पर संकट आया है, वेद शास्त्रों पर काल मंडराया है। भारतीय

संस्कृति-गौरव पर विनाश चक्र छाया है। दयानन्द के सैनिको ! इन सब ग्रासुरी ग्राक्रमण का सामना 'वेद' ज्योति ग्रौर "पाखंड-खंडिनी-पताका' 'लेकर बढ़ने से होगा। नारों से नहीं, भाषणों से नहीं, प्रदर्शन, स्वागत समारोहों से नहीं, तिल-तिल कर जलने के लिए तैयार वीरों की टोलियां जिस दिन तूफ़ानों से टकराने को तैयार होंगी, वह दिन हमारी विजय यात्रा का प्रथम दिन होगा।

हम भी चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्य की स्थापना का लक्ष्य पूर्ण करना चाहते हैं। हम भी क्रांति में विश्वास रखते हैं किन्तु हमारा वैदिक साम्राज्य वैदिक विचारधारा का साम्राज्य होगा, ग्रार्य नामधारी व्यक्तियों का नहीं। हमारी क्रांति राज्यों की नहीं, नामों की नहीं ग्रपितु विचारों की क्रांति है। हम संसार के मस्तिष्कों में भरा ज़हर निकाल वहाँ 'वेदामृत' भरना चाहते हैं।

हमारी इच्छा है कि वे सभी जो दयानन्द को ग्रपना मार्ग दर्शक ग्रौर वेद को ग्रपना धर्म ग्रंथ मानते हैं सिर पर क़फन वाँध प्रतिज्ञा करें कि "हम संसार में वैदिक विचारधारा का साम्राज्य स्थापित करेंगे। ग्रज्ञान के प्रतिनिधि ज़हरीले मज़हबी ग्रंथों को मिटाएँगे, मनुष्य को मनुष्य बनाएँगे। ग्रध्यात्म की स्थापना करेंगे ग्रौर भोगवादी विष को समाप्त करेंगे।

प्रतिज्ञा करना ग्रासान है निभाना कठिन, इसी कारण प्रति सप्ताह संगठन-सूक्त का सस्वर पाठ करने वाले ग्रार्य विघटन को जीवन लक्ष्य बना रहे हैं। जीवन में से सत्य का लोप हो रहा है। ऐसे में राजनीति का नहीं, धर्म का मार्ग ही हमारा सुधार कर प्रेरित कर सकता है।

हमारी मान्यता है कि ग्रार्यसमाज का, ग्रार्यसमाज के सदस्यों का कार्य है—"ग्रार्य" व्यक्तियों का निर्माण।

ग्रौर "ग्रार्य" व्यक्ति जहाँ भी होंगे वे धर्म का कार्य करेंगे, राजनीति में प्रविष्ट होंगे तो "ग्रार्य राज्य" स्वयं होगा। इसलिए ग्रार्यसमाज को सारी शक्ति व्यक्तियों को ग्रार्य बनाने में लगानी चाहिए।

रचनात्मक पग

प्रत्येक संस्था का, संगठन का, ग्रपना एक लक्ष्य होता है। प्रत्येक ग्रध्यापक के ग्रध्यापन का निश्चित विषय होता है। यदि गणित का प्राध्यापक ग्रपने समय में काव्य शास्त्र पढ़ाने लग जाए तो क्या वह कर्त्तव्य का पालन करेगा ? यही स्थिति ग्रार्यसमाज की है। उसका लक्ष्य उद्देश्य है वैदिक विचारधारा का प्रचार करना। किन्तु इस कार्य के लिए किसी के भी पास समय नहीं, वेद प्रचार को हमने व्यवहार में त्याज्य मान लिया है ? ऐसा करने से क्या

महर्षि का स्वप्न पूरा होगा ? आर्य जनों के मन-मस्तिष्क विकृत हो रहे हैं। समझने देखने की शक्ति नष्ट हो रही है। नारों के प्रभाव में खूब आते हैं। हिन्दी आन्दोलन चला……गो-रक्षा हुयी, जेलें भी भरीं और धन भी लुटा, पर क्या लाभ हुआ ? और आज भी स्थिति यही है। हम पत्तों को पानी दे रहे हैं, जड़ पर कुल्हाड़ा चला रहे हैं। हमारा आधार है 'वेद', हमारा जीवन है वेद-प्रचार।हम वेद की रक्षा करेंगे तो वेद हमारी रक्षा करेगा।

हमारा प्रश्न है आज आर्य नेताओं से, उन सब से, जो आर्यसमाज के ठेकेदार बनकर लम्बे-चौड़े भाषण देते हैं कि आज उनकी शक्ति वेद-प्रचार में क्यों नहीं लगती ? ग्राम-ग्राम और गली-गली में वेद के गीत गुंजाने के साधन क्यों नहीं जुटाते ? मूर्ति-पूजा और अंधविश्वासों के विरुद्ध प्रबल प्रहार क्यों नहीं होते ?

हमने नेता बनना चाहा है पर आर्यसमाज की भावना सफल करनी है तो नेता मार्ग छोड़ सुधारक मार्ग पर चलना होगा। हमें वोट मिलें या न मिलें हमें अज्ञान के विरुद्ध प्रवल आवाज उठानी होगी। तभी 'अनार्य मार्ग' समाप्त हो आर्य राज्य' स्थापित होगा।

'आर्य-राज्य' उस दिन होगा, जब मूर्ति पूजा मिटेगी। कुरान-पुराण बाइबिल और मत-वादों की हस्ती मिटेगी। जब मनुष्य ईश्वर पुत्र बनेगा। हमारे आस-पास रहने वाले व्यक्ति शैतान नहीं, देवता होंगे तब आर्य-राज्य होगा।

विशाल धरती के प्रांगण में जीवन का दर्शन "स्वार्थ" बन गया है। त्याग केवल शब्द कोष की शोभा रह गया है। "अध्यात्म" केवल बहकाने का मंत्र है। स्थिति विगड़ चुकी है, और सर्वाधिक चिन्तनीय यह कि हम मार्ग भ्रष्ट हो गए। हमें क्या करना था और क्या कर रहे हैं, कौन रोके, कौन समझाए ?

लोग कहते हैं कि महर्षि दयानन्द ने छठा समुल्लास लिखा, उन्होंने स्वराज्य का मंत्र दिया इसलिए आर्यसमाज को राजनीति में कूद पड़ना चाहिए। किन्तु ऐसा कहने वाले यह नहीं सोचते कि अगर महर्षि को आर्य समाज का राजनैतिक रूप ही इष्ट था तो क्यों नहीं महर्षि ने आर्यसमाज के १० नियमों में घोषणा की कि आर्यसमाज भारत को स्वतन्त्र कराएगा, आर्यसमाज का उद्देश्य भारत में आर्य साम्राज्य की स्थापना होगा ?

वस्तुतः आर्यसमाज के नियम-उद्देश्य और मंतव्यों पर गंभीरता से दृष्टिपात न करने का ही यह परिणाम है कि हम आर्यसमाज के लक्ष्य की मन चाही व्याख्या करने लग जाते हैं। हम भूल जाते हैं कि—

१—आर्यसमाज का लक्ष्य सर्वभौम चक्रवर्ती आर्य राज्य की स्थापना करना है। अर्थात् धरती के प्रत्येक मन और मस्तिष्क पर वैदिक विचारधारा का राज्य स्थापित करना।

२—आर्यसमाज सार्वभौम आन्दोलन है। वह अग्नि है अज्ञान को जलाने के लिए। वह तूफ़ान है अन्याय को मिटाने के लिए, वह ज्ञानगंगा है अभाव-तृष्णा समाप्त करने के लिए। वह सूर्य है अंधकार की समाप्ति के लिए।

३—'वेद' की पवित्र ऋचाओं का संगीत गुंज़ाना आर्यसमाज का 'धर्म' है। प्रभु के गीतों की झंकृतियाँ सुन-पाप-ताप रह नहीं सकते, यह विश्वास ही आर्य सभासदों को जीवन-प्रेरणा दे सकता है।

४—आर्यसमाज राजनैतिक दल नहीं, सुधारक आन्दोलन है। उसे जनता के पीछे नहीं चलना, जनता को अपने पीछे चलाना है। वह वोट का याचक नहीं, मार्ग का निर्देशक है।

हम चाहते हैं कि आर्य जनता आर्यसमाज का सही स्वरूप समझे। आर्य नेता महर्षि दयानन्द की राह पर चलें। हम पाखंड-खंडिनी उठाएँ, हम वेद-ज्योति लेकर चलें। हम आर्यसमाज को वेद-प्रसारक आर्यसमाज के रूप में देखना चाहते हैं।

हम युवकों को दयानन्द का दीवाना देखना चाहते है। सिर पर कफ़न बाँध हम प्रेरणा लें—दयानन्द से—श्रद्धानन्द और लेखराम से। हम तूफ़ानी बनें पर हाथ में वेद लेकर। हम ग्रामों में जाएँ वेद का प्रकाश लेकर।

युवक भी बहक रहे हैं और नेता भी। संन्यासी भी मार्ग भूल रहे हैं और विद्वान भी, ऐसे में हमारा कहना केवल यह है कि न हमारी सुनो न उनकी बस बात—

दयानन्द की मानो

ऋषि दयानन्द ने कहा था—

वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना प्रत्येक आर्य का परम धर्म है।

यह परम धर्म न छोड़ो। आर्य राज्य स्थापित करना है तो वेद का प्रचार करो। धरती पर स्वर्ग लाना है तो वेद का प्रचार करो। दयानन्द से प्यार है तो वेद को जीवन मंत्र बनाओ।

आर्य युवको! आज लेखराम का खून, वह खून जो कातिल के छुरे से गिरा था, तुम्हें बुला रहा है। श्रद्धानन्द के बलिदान की पुकार सुन सकते हो तो सुनो।

चलो दयानन्द की राह पर, काम करो दयानन्द का, वहको मत प्रलोभनों में फँसों मत, स्वार्थ की राह जलाओ और दयानन्द के गीत गाओ। दयानन्द की लक्ष्य पूर्ति के लिए।

वेद प्रचार का व्रत लो, मुझे यही कहना है और यही केवल यही आर्य राज्य की स्थापना का एक मात्र मार्ग है। OO

चार मुक्तक

(१)

करता मिहनत से जो काम नहीं,
सच्चा मिलता उसे आराम नहीं,
अपने मन को जो करले साफ 'प्रकाश',
इस सा फिर कोई तीर्थ धाम नहीं,

(२)

चौकी दारी को दूध की विठाई बिल्ली है
इस समझ पर बड़ा मगरूर शेख चिल्ली है
यूं न अठखेलियों में वक्त गँवा अब भी संभल
होने आई है शाम, दूर अभी दिल्ली है

(३)

रात अन्धेरी है वादल है, विकट जंगल है,
क्या है चिन्ता ये आत्मबल हमारा सम्बल है,
माघ के घोर शीत से बचाव करने को,
उसको कम्बल की जरूरत है जिसमें कम बल है।

(४)

खड़े हो सभा वीच जय कार वोलो
भले भक्त नेता व सरपंच हो लो
कहाँ तक हो सच्चे स्वकर्त्तव्य के प्रति
कभी वन्धु ! अपने हृदय भी टटोलो

—**प्रकाशचन्द्र "कविरत्न"**

—सत्यनारायण मिश्र

स्वाभिमान

* * *

स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजक उन दिनों अमरीका गये ही थे। एक दिन जब वे सियेटल डाकखाने से अपनी डाक ले कर लौटे तो रास्ते में एक छह वर्ष के लड़के को अखबार बेचते देखा। लड़के ने उनसे भी अखबार खरीदने का मीठा आग्रह किया। जब स्वामीजी ने मना किया तो वह उसी लहजे में कहने लगा, "खरीदिये न, इसकी कोई बहुत ज्यादा कीमत थोड़े ही है।" स्वामीजी ने तरस खाकर अखबार खरीद लिया और बोले, "क्यों बच्चे, तुम्हारे माता-पिता गरीब हैं?" यह अजीब-सा प्रश्न सुन कर लड़का आश्चर्यचकित हुआ। उसने पूछा, "क्योंजी, आप ने यह सवाल कैसे किया?" स्वामीजी ने कहा, "तुम अखबार बेच रहे हो न!" यह सुनना था कि लड़के का स्वर तेज हो गया—"तो क्या अखबार बेचनेवाला गरीब होता है? देखिये मिस्टर, मेरे माँ-बाप गरीब नहीं हैं। बात दरअसल यह है कि मैं उनके सहारे नहीं जीना चाहता। मुझे जो खर्च चाहिये, वह मैं अपनी कड़ी मेहनत से कमाता हूँ। मेरे पचास डालर बैंक में जमा हैं।" स्वामीजी उस लड़के का यह स्वाभिमान-भरा उत्तर सुन कर अपनी 'सहानुभूति' पर लज्जित हो गये थे और इस घटना को उन्होंने अपने लिए एक शिक्षा माना।

ऐसा स्वाभिमान जहाँ व्यक्ति को परावलंबन, कायरता, चापलूसी तथा दब्बूपन से छुटकारा दिलाता है वहाँ उसमें आत्मविश्वास, निर्भयता, अध्यवसाय एवं आत्मनिर्भरता की भावना भी जगाता है। यह व्यक्तित्व निर्माण का महत्वपूर्ण अंग है। स्वाभिमान-शून्य जीवन के मैंने ऐसे-ऐसे करुण और दयनीय दृश्य देखे-सुने हैं जिनकी कल्पनामात्र से दिल काँप उठता है।

एक कम्पनी का बिजनेस-मैनेजर है। उसका बड़ा अफ़सर उसके काम में कोई दखल नहीं देता, फिर भी बिजनेस-मैनेजर उससे सहमा-सहमा रहता है। वह कोई औचित्य की बात भी अपने अफसर के सामने नहीं रख सकता—

उसकी हिम्मत ही नहीं पड़ती। जब कभी उसे लंबी छुट्टी पर भी जाना होता है, वह डर के कारण पहले कभी सूचित करके नहीं जाता। लौटने पर जब बुरी-भली सुनने को मिलती है, तो भीगी बिल्ली की तरह सुन लेता है। उसके सहायक कर्मचारी पीठ पीछे उसका खूब मजाक उड़ाते हैं और अक्सर कहा करते हैं, "न जाने इसे इस कुरसी पर किसने बैठा दिया ?"

इसी तरह मैंने एक पत्रकार बंधु का भी किस्सा सुना है। उनके मालिक बड़े सभ्य, सुसंस्कृत और व्यवहार-कुशल समझे जाते हैं और उनका सम्मान करते हैं। लेकिन वे हैं कि चौबीसों घन्टे जी-हजूरी को तत्पर! मालिक के सामने उन्होंने कभी मुंह खोला हो या कभी उचित बात के लिए भी अड़े हों, ऐसा किसी को ध्यान नहीं आता। कहते हैं, अब मालिक उनकी इस "विनम्रता" से इतना खुल गया है कि वह उनके मारफत जो चाहे करवा लेता है—कभी-कभी उनके किये-कराये को 'रिजेक्ट' भी कर देता है। उनके लिए मानो स्वाभिमान या अपमान में कोई अंतर नहीं रह गया है—वे 'हीं-हीं करके सब बरदाश्त कर लेते हैं।

स्वाभिमान-शून्य या दब्बू जीवन के ये सिर्फ दो उदाहरण हैं। थोड़ा साहस बटोर कर विचार करें तो हम-आप अपने जीवन में भी कुछ ऐसे ही चित्र पा सकते हैं। हाँ, उनमें मात्रा का अंतर जरूर हो सकता है।

भला कोई भी व्यक्ति इतना गिर कर या स्वाभिमान वेच कर जीवन जीने को क्यों तत्पर हो जाता है ? यह बड़ा गंभीर प्रश्न है। इस संबंध में मेरा अपना अनुभव तो यह है कि ऐसे ९० प्रतिशित व्यक्तियों के साथ उनकी खुद की हीनता, जड़ता, गैरजिम्मेदारी, कामचोरी, अज्ञान, काहिली और अदूरदर्शिता ही कारण बनती है। जिनमें प्रतिभा है, अपने कर्तव्य का बोध है, समय पर काम करना आता है, अपने ऊपर भरोसा है, मेहनत-मजदूरी से प्रेम है और जो अपने तथा दूसरों के प्रति ईमानदार हैं, शिष्ट एवं व्यवहार-कुशल हैं, साथ ही साथ अपने भविष्य के प्रति आशान्वित है, उसके स्वाभिमान को विश्व की कोई भी ताकत चुनौती नहीं दे सकती। हमारी अपनी कमजोरी ही हमें अपमान के कड़वे घूंट भरने को विवश करती है।

इसका दूसरा कारण है मिथ्या आकर्षण—ऊँचे पद, वेतन या किसी 'अवसर' का। इस आकर्षण तक पहुंचने के दो ही उपाय हैं—एक तो यह कि हम अपने आप में ऐसी पात्रता का निर्माण कर लें कि वह आकर्षण हमारे लिए सहजसुलभ हो जाये। दूसरा यह कि तिकड़म भिड़ा कर, चापलूसी करके या घूस देकर हम उस आकर्षण को लपक लें। आज समाज में इसी छीना-झपटी का दौर ज्यादा है और इसी अनुपात में स्वाभिमान-शून्यता भी दीख

पड़ती है। जो लोग खुशामद या जी-हजूरी के सहारे ऊँचे पद और बड़े-बड़े वेतन पा रहे हैं, उनका स्वाभिमान भी कभी बना नहीं रह सकता। यों अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने के लिए वे 'स्वाभिमानी' होने का दंभ भरें, यह दूसरी बात है।

जो व्यक्ति इस लोभ तथा आकर्षण का जितना संवरण कर सका है—प्रतिभा संपन्न बनने एवं अपने में पात्रता उत्पन्न करने तक का धैर्य रख सका है—वही स्वाभिमान को भी सुरक्षित रख पाया है। कहते हैं कि एक बार हातिम के यहाँ भोज हो रहा था। उसी समय एक लकड़हारा अपने सिर पर लकड़ी का गट्ठर लिये जाता दिखायी पड़ा। किसी ने पूछा, "तुम हातिम की दावत में क्यों नहीं गये ?" उसने जवाब दिया, "जो मेहनत की कमाई खाता है, उसे किसी हातिम के एहसान की जरूरत नहीं।"

दक्षिण भारत के महान् संगीतज्ञ श्याम शास्त्री के जीवन की भी एक बड़ी प्रेरक घटना है। वे कहा करते थे कि संगीत तो मेरा जीवन है। मध्य-रात्रि के गहन अंधकार में वे ध्यानमग्न हो संगीत की साधना करते थे। एक दरबारी संगीतज्ञ के पुत्र को उनका संगीत बड़ा प्रिय था वह नित्य शाम को उनका मर्मस्पर्शी गान सुनता और कह उठता, "वाह, तुम्हारे स्वर में तो साक्षात सरस्वती ही उतर आयी हैं। अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हें राजा का परम कृपापात्र गायक बनावा दूंगा।" श्याम शास्त्री का कलाकार जाग उठा, उन्होंने कहा, "इस के लिए धन्यवाद, मुझे अपनी साधना के अतिरिक्त और किसी की कृपा नहीं चाहिये। मैं अपनी कला को पद-प्रतिष्ठा तथा पुरस्कार आदि के लिए कभी नहीं बेचूंगा।"

सांसारिक भाषा में स्वाभिमान बेच कर पद-प्रतिष्ठा तथा धन से 'समझौता करने को प्रायः 'व्यवहार-कुशलता' की संज्ञा दी गयी है, लेकिनअपने उस नरकतुल्य जीवन में किसी स्वाभिमानी व्यक्ति ने-समाज कोकोई मौलिक देन दी हो, अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाया हो, अपनी कर्त्तृत्व-शक्ति का परिचय दिया हो, या कोई अन्य महत्वपूर्ण कार्य किया हो, ऐसा मुझे याद नहीं आता। हाँ, मैंने अपने आस पास सुखी-संतुष्ट दीखने वाले लोगों को स्वाभिमान-शून्य जीवन की मानसिक वेदना में रोते-कलपते देखा है।

लोग बहुधा यह भी शिकायत करते हैं कि क्या करें, वह 'बास' मालिक या अफसर किसी स्वाभिमानी व्यक्ति को बरदाश्त ही नहीं करता। ऐसे अशिष्ट और दंभी 'बास' भी समाज में हैं यह मैं मानता हूँ, लेकिन ऐसे व्यक्ति ज्यादा नहीं हैं, और जो हैं उनके दिमाग को भी किसी अधीनस्थ कर्मचारी की दुर्बलता ने ही बिगाड़ा होगा। यदि कोई व्यक्ति अपने आप हाथ में तेल

की शीशी लेकर किसी 'बास' की पगचंपी की इच्छा प्रकट करे और 'बास' उस के सामने निर्लज्ज हो कर पैर फैला दे, तो इस में किस का दोष ? जिसे अपनी पद-प्रतिष्ठा का स्वयं खयाल नहीं, उसके स्वाभिमान की दूसरे को क्या चिन्ता पड़ी है ?

प्राय: देखने-सुनने में यही आया है कि हर समझदार, दूरदर्शी तथा शिष्ट 'बास' कार्यकुशल एवं स्वाभिमानी व्यक्ति को ही चाहता है। वह अच्छी तरह जानता है कि जो काहिल तथा अयोग्य व्यक्ति अपनी आत्मा का हनन करके अर्थात् अपने आपको धोखा देकर काम करता है, वह चापलूसी या खुशामद के परदे में किसी दिन उसे भी धोखा दे सकता है। दुर्वल-मन व्यक्ति को गिरते कितनी देर लगती है ! इसके विपरीत स्वाभिमानी व्यक्ति से कम से कम उसे यह खतरा कभी नहीं रहता।

यहाँ हमें अपने मन में एक-दो बातें और स्पष्ट कर लेनी हैं। स्वाभिमान से मेरा तात्पर्य हर किसी बात पर अड़ जाना नहीं है। किसी वात या घटना का संबंध हमारे स्वाभिमान से है, इसका बड़े विवेक से निर्णय करना चाहिये। मुझे एक खजाँची का ध्यान है। वह एक सार्वजनिक संस्था में काम करता था और सव जमा-खर्च उसी के हाथों होता था। संस्था के मंत्री अब-तब आ कर हिसाब 'चेक' कर लेते थे। एक वार उसने अधिकारी से विना पूछे रुपये अपने नाम लिख कर ले लिये। जैसे-जैसे दिन वीतते गये, रोकड़ के पन्ने भी पलटते गये। पंद्रह-बीस दिन वाद जब मंत्री की निगाह अचानक उस अंक (आइटम) पर पड़ी, तो उन्हें बड़ा अखरा और खजांची को आड़े हाथों लिया, 'तुम्हें रुपया लेना था तो पूछ कर या स्वीकृत करवा कर लेना चाहिये था। यह तो एक तरह की चोरी है।' 'चोरी' शब्द सुनते ही खचांची को ताव आ गया—'मैंने तो रोकड़ में लिख कर रुपये लिये हैं। आपने मुझ पर यह आरोप कैसे लगाया ?' और इसी वात पर ख़जांची को वहाँ से छुट्टी मिल गयी। उस व्यक्ति ने यह नहीं सोचा कि क्या उसकी भी कोई गलती है ? अब झूठे अहम पर अड़ गया और उसे इसका फल भोगना पड़ा।

ऐसी घटनाएँ अक्सर होती हैं जब कि हम अपनी भूल या गलती को भी 'इज्जत' का सवाल बना लेते हैं। हमें अपने वारे में वहुत-से भ्रम भी होते हैं, जैसे-मैं तो बड़ा काविल हूँ, बड़ा कार्यकुशल हूँ, ईमानदार हूँ, बड़ा जिम्मेदार हूँ, आदि, जब कि वास्तविकता इसके विपरीत होती है। कभी-कभी हम ईर्ष्या या होड़ के शिकार वन कर दूसरों को नीचा दिखाने के लिए भी अपने ये भ्रम पाल लेते हैं। इसके वशीभूत होकर हम जो 'अहम्' प्रकट करते हैं, वह हमारे स्वाभिमान का नहीं, वल्कि झूठे दंभ का ही परिचायक है। अतः अपनी गलती

तथा श्रम के साथ स्वाभिमान को नहीं जोड़ना चाहिये, अन्यथा हमारा व्यवहार उद्धृत हो कर हमारा अपना ही नुकसान कर सकता है।

स्वाभिमान का एक पहलू और है—यह केवल 'रोजी-रोटी' तक ही सीमित नहीं है, इसका सामाजिक संस्कारों से भी गहरा संबंध है। जिस व्यक्ति ने विवेक-पूर्वक स्वाभिमानी जीवन जीना सीख लिया है, वह फिर चाहे किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो, अपने उदात्त अहम् को कभी किसी कीमत पर भी नहीं छोड़ता।

स्व. आशुतोष मुखर्जी के प्रारम्भिक जीवन की घटना है एक बार वे ट्रेन में कहीं जा रहे थे। उसी डब्बे में एक उद्दंड और मदांध अँगरेज अधिकारी भी बैठा था। यह उस समय की बात है, जब अँगरेजों की निगाह में किसी भारतीय का स्थान कुत्ते से ज्यादा नहीं था। उस अँगरेज का शैतान जागा और उसने आशुतोष बाबू की निगाह बचते ही अपनी छड़ी से उनकी चप्पलें उठा कर बाहर फेंक दीं। आशुतोष बाबू सारी स्थिति समझ गये, पर शांत रहे। थोड़ी देर बाद जब वह अँगरेज बाथरूम में गया, तो आशुतोष बाबू ने उसका कोट उठाकर खिड़की से बाहर फेंक दिया। लौटने पर जब उसने अपना कोट नदारद पाया तो उसने पूछा, "बताइये, मेरा कोट कहाँ है?" आशुतोष बाबू ने चुटकी लेते हुए कहा, "आपका कोट मेरी चप्पलें ढूँढ़ने गया है।"

उपर्युक्त प्रसंग हँसी—मजाक भले ही लगे, किन्तु यह स्वाभिमान-जन्य साहस और निर्भयता से लबालब भरा हुआ है। जिस व्यक्ति ने अपने उदात्त अहं और आत्मगोरव को जगा लिया है, भला उस के स्वाभिभान को कौन ललकार सकता है? ऐसा व्यक्ति चाहे लँगोटी लगाने वाला साधु हो, चाहे साधारण किसान, मजदूर या बुद्धिजीवी-उसने बड़े-बड़े सम्राटों तथा सत्ताधारियों को अपने कदमों पर झुकाया है। हम-आप भी स्वाभिमान को जगा कर अपने कर्तृत्व और प्रतिभा को विकसित कर सकते हैं। ●

एक बार 'तिलक जी रेलगाड़ी में बम्बई से पूता जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने एक समाचार-पत्र खरीदा। 'तिलक' जी ने अभी अखबार की एक ही पंक्ति पढ़ो थी कि पास बैठे एक सहयात्री ने कहा—"अखबार का पन्ना मुझे दे दें।"

लोकमान्य ने तुरन्त ही अपनी जेब से एक आना निकालकर सहयात्री के हाथ में टिकते हुए कहा—"लीजिए, इससे अखबार खरीदकर आजादो से पढ़िए। कृपया मुझे अपना अखबार शांति पूर्वक पढ़ने दीजिए।" ●

अध्यात्म—

—विद्याभास्कर शास्त्री

प्रभु की प्राप्ति के साधन

* * *

यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारत्युयत्तरम्। ऋतं च यत्र श्रद्धा चायो
ब्रह्म समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः। अथर्व १०।७।११

अथर्ववेद में स्कम्भ का वर्णन है।

कुछ मंत्रों में लगातार 'कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधितिष्ठति० इत्यादि मंत्रों द्वारा प्रश्न किया गया है, कि इसके किस अंग में तप, ऋत, व्रत, श्रद्धा, सत्य इत्यादि रहते हैं। अग्नि, वायु, चन्द्रमा, भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ लोक इत्यादि रहते हैं। जिनमें रहकर प्रजापति ने "सर्वान् लोकान्" सब लोकों को धारण किया है। वह प्रजापति कौन है? क्या है?

इन प्रश्नों का उत्तर कुछ मंत्रों में विस्तार से दिया गया है। जिनमें से एक मंत्र यह उक्त मंत्र है—

ऐसा प्रतीत होता है कि इस मंत्र को आधार भूत मानकर प्रश्नोपनिषद् कानिर्माण हुआ है। प्रश्नोपनिषद् के प्रसंगों से इस मंत्र का भाव स्पष्ट हो जाता है।

पहले इस मंत्र का भावार्थ देखियेगा फिर हम आपके समक्ष प्रश्नोषनिषदृ की बात प्रस्तुत करते हैं।

भावार्थ-यत्र तपः पदाक्रम्य व्रतं इत्यादि—

जिसमें तप से पराक्रम करके उत्तम व्रत को धारण किया जाता है- ऋण और श्रद्धा तथा आपो मय प्राण और ज्ञान जिसमें रहता है वही आधार स्तम्भ है। तू वही आनन्दमय सबका आधार है।

अब प्रश्नोपनिषद् की ओर आइये :—

६ ऋषियों ने पिप्पलाद ऋषि से ६ प्रश्न किये हैं। ऋषि ने उत्तर दिया है यही प्रश्नोपनिषद् है।

६ ऋषि कौन-कौन हैं ? १. सुकेशा, २. सत्यकाम, ३. गार्ग्य ४. कौशल्य, ५. वैदर्भि, ६. कबन्धी ।

पिप्पलाद ऋषि ने इन प्रश्नकर्ताओं को अधिकारी नहीं समझा । अतः एक बात कह दी, कि तुम लोग एकवर्ष तक इन तीनों गुणों (तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा) का अभ्यास करो । तान् ह सऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ, यथा कामं प्रश्नान् पृच्छथ । यदिविज्ञानस्यामः सव ह वो वक्ष्यामः ।

अब जरा महर्षि दयानन्दजी द्वारा निर्मित यज्ञ पद्धति की ओर ध्यान दें । अग्नि प्रदीप्त करने वाला मंत्र पढ़कर अग्नि प्रज्वलित करने के पश्चात् होता तीन समिधायें समिधादान के मंत्रों से क्रमशः अग्नि में डालता है । इन समिधा के मंत्रों का क्या भाव है ?

पहले मंत्र का भावार्थ :- हे अग्नि, तू प्रदीप है । और बढ़ तथा हमें बढ़ा । हम प्रजा पशुओं से कान्ति से तथा अन्नादि से युक्त हों ।

जरा गम्भीरता पूर्वक सोचिये यहाँ अग्नि का तप क्या है ? प्रदीप्त होना, जलते रहना । अर्थात् पहली समिधा तप की समिधा हुई ।

अग्नि से पुत्रादि की उत्पत्ति कैसे ? देखिये, अग्नि में डाले हुये हव्य-पदार्थों से वायु की शुद्धि वायु से जल, जल से अन्न, अन्न से वीर्य, और वीर्य से सन्तानोत्पत्ति । अर्थात् दूसरी समिधा ब्रह्मचर्य की हुई । प्रमाण में गीता अ० ३ । १५ देखिये ।

अन्नाद् भवति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः ।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञ कर्म समुद्भवः ।।

श्री कृष्ण ने ज्ञान यज्ञ को परम तप माना है ।

तप करना दोनों का धर्म है । आत्मा का भी और परमात्मा का भी । आत्मा का तप क्या है ? देखिये गीता अ० १२ । १२ से १४ तक ।।

देव द्विजः गुरु प्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।।
अनुद्वेग करं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ् मयं तप उच्यते ।।
मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्म विनिग्रहः ।
भाव सँशुद्धिरित्येतत्तयो मानसमुच्यते ।।

शरीर मानस और वाचिक तीनों प्रकार के तपों के एक-एक के तीन भेद करके ९ प्रकार के तप हो जाते हैं । अर्थात् इससे यह स्पष्ट हुआ कि ब्रह्म-

चर्यादि पालन में (जो कि परमात्मा प्राप्ति के साधन हैं) समस्त कठिनाइयों को सहने का नाम ही तप है। इसके पश्चात् हीं श्रद्धा का नम्बर आता है।

सब प्रकार का तप करो और श्रद्धा रहित होकर करो तो ब्रह्म प्राप्ति असम्भव है। यज्ञ की तीसरी समिधा श्रद्धा की समिधा है। अग्नि को प्रखर करने के लिए अग्नि में समिधा छोड़ते हैं इस कार्य में स्वार्थ की नहीं बल्कि निःस्वार्थ या परमार्थ की भावना होनीं चाहिये और परमार्थ बिना श्रद्धा के निष्फल है—

गीता का प्रमाण भी देखिये :—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इहं ।।

गीता अ० १२ ।।

श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् इत्यादि

अब स्पष्ट हो गया कि आत्मा का तप परमार्थ के कार्यों में समस्त विघ्न-बाधाओं एवं कठिनाइयों को सहना ही है।

अब परमात्मा के तप पर भी एक दृष्टि डाल लीजिए।

प्रश्नोपनिषद् के प्रथम प्रश्न पर ध्यान दीजिए :—

कवन्धी ने पहला प्रश्न पूछा है—अथ कबन्धी कात्यायनं उपेत्य पप्रच्छ भगवन् ! कुतो ह इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति।

ऋषि पिप्पलाद उत्तर देते हैं—तस्मै स होवाच, प्रजा कामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत, स तपस्तप्त्वा स मिथुनं उत्पादयते रयिंच प्राणश्चेत्येतो मे बहुधा प्रजाः करिष्यन्ति। अर्थात् उस परमात्मा ने तप किया। परमात्मा का तप क्या है?

मुण्डकोपनिषद् प्रथम मुण्डक प्रथम खण्ड में आया है कि

यः सर्वज्ञः सर्व विधस्य ज्ञान मयं तपः। तस्मात् एतद्ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते। इसमें "यस्य ज्ञानमयं तप !"

अर्थात् ज्ञान ही जिस परमात्मा का तप है। अब ज्ञान क्या है? कहाँ से आता है? विचारिये। विचार करने पर और प्रमाण से भी यह ज्ञात होता है कि उस परमात्मा का ज्ञान उसका स्वाभाविक गुण है।

त तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च ।।

श्वेताश्वतर । ६ । ८ ।।

अतः इससे यह स्पष्ट हो गया कि परमात्मा का स्वाभाविक अनन्त ज्ञान

ही उसका तप है। उसी तप से यह रयि और प्राण प्रकट हुये। परमात्मा का ही अमृत पुत्र यह जीवात्मा है अतः इसे भी—तप करना ही होगा। इसीलिये पिप्पलाद ने उन शिष्यों को कहा कि एक वर्ष तक तप ब्रह्मचर्य और श्रद्धा का अभ्यास करो। इसी उपनिषद् में आगे चलकर इस वात की पुष्टि की गई है कि—

अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्यया आत्मानं अन्विष्य आदित्यं अभिजयन्ते। एतद्वै प्राणानां आयतनम् एतदमृतम्। अभयमेतद् परायण एतस्माद् न पुनरावर्तते इत्येष निरोधः।

अर्थात् मनुष्य उत्तम तप से ब्रह्मचर्य से श्रद्धा से और ज्ञान से अपनी आत्मिक शक्ति को प्राप्त कर आदित्य (परमात्मा) को प्राप्त कर लेता है।

वानप्रस्थ प्रकरण के कुछ बड़े ही सुन्दर मंत्र इस वात की पुष्टि करते हैं।—

परीक्ष्य लोकान् कर्मचित्तन् ब्राह्मणो निर्वेदभायान्नास्त्य कृतः वृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्म निष्ठम्॥

श्रद्धा पूर्वक हाथ में समिधा लेकर गुरु के पास ज्ञान प्राप्ति हेतु जावे। यहाँ स्पष्ट है कि विना श्रद्धा के ज्ञान प्राप्त्यर्थ गुरु के पास नहीं जाना चाहिये।

वानप्रस्थी अग्नि में समिधा की आहुति देते हुए कहता है कि—

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि व्रतं च श्रद्धां चोपमीन्धे त्वा दीक्षितोऽहम्॥ यजु० २०।

भावार्थ—हे व्रतपते! अग्ने! दीक्षा को प्राप्त होता हुआ मैं तुझ में स्थिर होकर ब्रह्मचर्यादि आश्रमों का धारण और उसकी सामग्री (श्रद्धां) सत्य की धारणा को उनके उपायों को प्राप्त होता है। मैं इस अग्नि में जैसे श्रद्धा को अर्पण करता है वैसे ही आत्मरूपी अग्नि को विद्या व्रतादि नियमों से तथा श्रद्धा से प्रज्वलित करता है।

दूसरा प्रश्न वैदर्मि ने पूछा :— तीसरा प्रश्न कौशल्य पूछता है। चौथा प्रश्न गार्ग्य ने पाँचवाँ प्रश्न सत्य काम ने और छठा प्रश्न सुकेशा ने पूछा है :—

इन ६ प्रश्नों के अन्त की जो वात है वह है महत्व की बात।

देखिये प्रथम प्रश्न के अन्त में—तेषामसौ विरजो ब्रह्म लोको न येषु जिह्म अनृतं माया चेति॥ अर्थात् उसी के लिये यह (विरजः) रजोगुण रहित निर्मल ब्रह्म लोक है। वही उस ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। जिसके अन्दर कुटिलता झूठ और छल कपट नहीं है अर्थात् जिसका हृदय शुद्ध है।

दूसरे प्रश्न के अन्त में देखिये :—

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत् प्रतिष्ठितं मातेवपुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति । अर्थात् हे प्राण ! तू तीनों लोकों में वर्तमान है। यह सब कुछ प्राण के वश में है। हे प्राण ! तू माता के समान पुत्रों की रक्षाकर श्री और बुद्धि को हमारे लिये दे। जिसके पास श्री और बुद्ध है वह मुक्ति लाभ कर सकता है।

तीसरे प्रश्न के अन्त में :—

उत्पत्तिभायाति स्थानं विवभुत्वं चैव पञ्चधा अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञाय अमृतमश्नुते विज्ञाया मृतमश्नुत इति मनुष्य पाँचों प्रकार के प्राण, उसकी शक्ति, उनकी व्यापकता को जानकर चक्षु आदि इन्द्रियों का प्राण के साथ क्या सम्बन्ध है इस बात को समझकर मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।

चौथे प्रश्न के अन्त में :—

ज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणाः भूतानि प्रतिष्ठन्ति यत्र तदक्षरं वेदयते यस्तु सौम्यं सं सर्वज्ञः सर्वमेवावि वेशेति ।

हे प्रिय ! पाँच प्राण, पाँच भूत सब इन्द्रियों के साथ जिनमें रहते हैं, उस परमात्मा को जीवात्मा जानता है। परमात्मा का ज्ञान सब प्रकार से जिसने प्राप्त कर लिया है वह निश्चय ही परमात्मा का आनन्द प्राप्त कर सकता है।

पाचवें प्रश्न के अन्त में :—

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभियत्तत्कवयोतम वेदयन्ते ।
तमोकारेणैव आयतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तभजर ममृः परं चेति॥

ज्ञानी मनुष्य, कर्म उपासना और ज्ञान से उसको जानते हैं। मुक्ति के आनन्द को विद्वान् लोग ओंकार के अवलम्बन से ही प्राप्त कर सकते हैं। जो शान्त है अजर है अमर है, अभय है और सर्वोत्तम है।

छठवें प्रश्न के अन्त में :—

अराइव रथनामौ कसा यस्मिन् प्रतिष्ठिताः तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति ।

हे शिष्यो ! किस प्रकार रथ की नाभि में छोटे-छोटे अरे लगे रहते हैं। उसी प्रकार परमात्मा में ओत प्रोत हैं। यदि मृत्यु से छुटकारा चाहते हो तो उस पुरुष को जानो।

पिप्पलाद ऋषि ने कहा कि मैं इतना ही उस ब्रह्म के विषय में जानता हूँ। फिर सभी ऋषियों ने श्रद्धापूर्वक पिप्पलाद ऋषि का नमस्कार किया।

तीसरे प्रश्न में एक बात विशेष है—

प्रश्न पूछने पर ऋषि पिप्पलाद कौशल्य को कहते हैं कि तुम बहुत ही सूक्ष्म प्रश्न पूछ रहे हो। परन्तु तुम वेद को जानते हो इसलिए तुम समझ सकते हो हम तुम्हें बता रहे हैं। इस बात से यह भी स्पष्ट हो, जाता है कि लोग वेद का स्वाध्याय करते थे और जिज्ञासु बन कर जटिल प्रश्नों के समाधान के लिये गुरु के पास जाते थे, और गुरु उन्हें अधिकारी समझकर ब्रह्म सम्बन्धी उपदेश देता था।

महर्षि दयानन्दजी ने भी इसी आधार पर आर्यसमाज के तीसरे नियम में लिखा है कि वेद का पढ़ना पढ़ाना, और सुनना सुनाना, सब आर्यों का परम धर्म है। धर्म ही नहीं अपितु परम धर्म है। यह बड़े महत्व की बात है।

हम ईश्वर सम्बन्धी बातें जानना तो चाहते हैं परन्तु अधिकारी बनकर नहीं। स्वाध्याय विहीन होकर श्रद्धारहित होकर ईश्वर को जानना अत्यन्त दुष्कर हैं।

इन सभी बातों का तात्पर्य यह है कि इस परम ब्रह्म की प्राप्ति के लिए तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा इन तीनों गुणों को अवश्यमेव धारण करना चाहिए। बिना इन गुणों के परमात्मा की प्राप्ति कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है।

OO

प्रार्थना

अपामीवामपविश्वामनाहुतिमपरातिं दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्मयच्छता स्वस्तये ॥

निकट हमारे रोग दुःख दुर्गुण नहीं आवें ।
यज्ञ न करने की प्रवृत्ति को दूर हटावे ॥
कोई कृपण न रहे दान के भाव जगावें ।
शत्रु न करें अनिष्ट सभी शुभ गीत गति पावें ।

द्वेष दूर होवें "अमर" संकट सकल समाप्त हों ।
विद्वानों की शरण को श्रद्धा से प्राप्त हों ॥

—अमर स्वामी

मणि-माला

१—सदा सच बोलो, सत्य बोलने से मन शुद्ध रहता है।

२—लालच मत करो क्योंकि यह पाप की जड़ है।

३—आत्मा की शक्ति बढ़ाने के लिए प्रभु का जाप अति आवश्यक है।

४—पत्थर की भाँति सदैव दृढ़ रहो।

५—नशीली चीजों का त्याग करो।

६—शरीर को पाचक भोजन, व्यायाम और ब्रह्मचर्य से पुष्ट करो।

७—विद्या, ज्ञान से शोभा देती है।

८—सत्य की सदा जय होती है।

९—जहाँ धर्म है, वहीं सदाचार है। जिसका चरित्र ऊँचा है, वही संसार में विजयी होता है।

१०—ईश्वर सब जगह व्यापक है हर जगह उसका भय करो।

११—ईश्वरविश्वासी कभी कष्ट नहीं पाता है।

१२—सारे संसार को मित्र बनाने में तन, मन, धन से सेवा करने का प्रयत्न करो।

१३—अपने विचारों को सदैव निर्मल रखो क्योंकि विचारों का प्रभाव मनुष्य जीवन पर अधिक होता है।

१४—ब्रह्मचर्य और तप से मनुष्य ने मौत को जीता है।

१५—परिश्रमी की ईश्वर भी सहायता करता है।

१६—बिना कष्ट सहे धन और विद्या की प्राप्ति नहीं होती।

१७—जिस कार्य से लोक परलोक दोनों का सुधार हो वही उत्तम है।

१८—किसी काम को करने में शीघ्रता न करो सोच-विचार कर किये गये कार्य कभी निष्फल नहीं होते।

१९—विद्वान् और सज्जनों का सत्सङ्ग ही मनुष्य की उन्नति का साधन है क्योंकि सत्सङ्ग से सत्यता का प्रभाव ममुष्य पर अवश्य पड़ता है।

२०—आलस्य और उन्माद विनाश को जड़ है : ★

आइए, वेद पढ़ें

हरिशरण सिद्धान्तालंकार

ऋग्वेद के प्रथम सूक्त का स्वाध्याय

प्रभु मिलन की राह

* * *

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ।। ऋग्वेद १ । १ । १

अग्निम्=उस (अगि गतौ) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के गति देने वाले—सब जीवों की उन्नति के साधक अग्रणी प्रभु को ईडे=मैं उपासित करता हूं, उस प्रभु का मैं पूजन करता हूँ । जो प्रभु पुरोहितम् (पुरः हितम्)=पहले से ही रखे हुए हैं अर्थात् जो बनने से सृष्टि से पूर्व ही विद्यमान हैं । जो बने कभी नहीं 'स्वयम्भू' हैं अपने आप होने वाले हैं (खुद आ) खुद आने वाले हैं अथवा जो प्रभु हम जीवों के (पुरः) सामने (हितम्) एक आदर्श के रूप में विद्यमान हैं । उनके अनुरूप हमें अपने को बनाना है ।

यज्ञस्य देवम्=वे प्रभु वेदवाणी द्वारा सब यज्ञों का, श्रेष्ठतम कर्मों का प्रकाश करने वाले हैं । हमारे सब कर्तव्य कर्मों का वेद द्वारा प्रभु ने प्रतिपादन किया है । ये प्रभु ही ऋत्विजम्=समय-समय पर प्रत्येक ऋतु में पूजा के योग्य हैं । प्रभु के पूजन से प्रभु की शक्ति का हमारे में प्रवाह होता है । हम स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए ज्ञानपूर्वक कर्मों को करें । फिर जीविकोपार्जन के कर्मों में प्रवृत्त हों । बाकी समय स्वाध्याय में लगायें । स्वाध्याय श्रान्त होने पर प्रभु के नाम का जप करें । यह हमें फिर से तरोताजा कर देगा । दिन में दुनिया के कर्मों से अवकाश न मिले तो रात्रि के समय प्रभु के नाम का जप करते हुए निद्रा की गोद में जायें । इससे सारी रात्रि प्रभु के साथ

सम्पर्क बना रहेगा। स्वप्न में प्रभु का आभास भी मिलेगा। इसे हम जागृत होने पर भी न भूलने का प्रयत्न करें। वही बात योग-दर्शन में 'स्वप्नज्ञानालम्बन वा' इस सूत्र से कही गयी है।

होतारम्=वे प्रभु सब कुछ देने वाले हैं (हु दाने) तथा प्रलय के समय सारे ब्रह्माण्ड को अपने अन्दर ले लेने वाले हैं। प्रभु ने इस सृष्टि में हमारे हित के लिए सब आवश्यक पदार्थ हमें प्राप्त कराये हैं। रत्नधातमम्-रमणीय धनों के प्राप्त कराने वालों में वे प्रभु सर्वोत्तम हैं। प्रभु ने शरीरों में इस प्रकार व्यवस्था की है कि खाये हुए आहार से 'रस-रुधिर-मांस-मेदस्-अस्थि-मज्जा-शुक्र' इन सात धातुओं का निर्माण होता है। ये सात धातुएं ही सात रत्न हैं। इनके कारण ही शरीर रमणीय बना है सो ये ही रत्न हैं। प्रभु ने प्रत्येक शरीरगृह में इन सात रत्नों की स्थापना की है। 'दमे २ सप्त रत्ना दधानम्' इस 'रत्नाधातमम्' प्रभु का पूजन करें।

भावार्थ—मैं 'अग्नि पुरोहित-यज्ञ के देव-ऋत्विज् होता व रत्नधातम्' प्रभु का पूजन करता हूँ।

२—'ईड्य' प्रभु

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्योनूतनैरुत।
स देवां एह वक्षति ॥ १ : १ : २

अग्निः=सारे ब्रह्माण्ड को गति देने वाले व सब जीवों को प्रगति पथ पर प्रेरित करने वाले प्रभु, ऋषिभिः=तत्वदर्शियों से ईड्यः=पूजा के योग्य हैं, अर्थात् प्रभु का पूजन वस्तुतः ये तत्वद्रष्टा ऋषि ही करते हैं। वे तत्त्व-द्रष्टा जो कि पूर्वेभिः (पॄ पालन-पूरणयोः)=अपना पालन करते हैं, अपने को रोगों से आक्रान्त नहीं होने देते तथा अपनी न्यूनताओं को दूर करके अपने पूरण का प्रयत्न करते हैं। उत=और नूतनैः=नु (To praise, to go) जो सदा प्रशंसात्मक शब्द ही बोलते हैं जो कभी निन्दा नहीं करते तथा सदा गतिशील हैं—जिनका जीवन क्रियामय है। संक्षेप में भाव यह है कि प्रभु का स्तवन वे करते हैं जो कि (क) तत्वद्रष्टा बनते हैं (ख) अपने शरीरों को रोगों का शिकार नहीं होने देते (ग) अपनी न्यूनताओं को दूर करने का प्रयत्न करते हैं (घ) जो कभी कटु व निन्दात्मक शब्दों को नहीं बोलते (ङ) तथा क्रियामय जीवन विताते हैं।

सः=वे प्रभु ही इस प्रकार उपासित होने पर, इह=इस मानव-जीवन में हमें देवान=दिव्यगुणों को, आ वक्षति=प्राप्त कराते हैं। अर्थात् प्रभु-

उपासना का लाभ यह होता है कि हमारे में दिव्यगुणों की वृद्धि होती है।

भावार्थ :—प्रभु का सच्चा उपासक वह है जो कि ज्ञान प्राप्त करता है (ऋषि) शरीर में निरोग, मन में निर्मल होता है, सदा शुभ शब्दों को बोलता है और क्रियाशील होता है इस प्रकार प्रभु के उपासन से हमारे में उत्तरोत्तर दिव्य गुणों की वृद्धि होती है।

३—प्रशस्त धन

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे।
यशसं वीरवत्तमम् ॥ १। १। ३

पूर्व मन्त्र में ऋषियों द्वारा अग्निस्तवन का उल्लेख हुआ है। उस प्रभु की उपासना से मनुष्य सांसारिक दृष्टि से असफल हो जाता हो, ऐसी बात नहीं है। विष्णु की उपासना करेंगे तो लक्ष्मी के दर्शन तो होंगे ही। विष्णु के साथ लक्ष्मी का निवास तो है ही। सो मन्त्र में कहते हैं कि अग्निना=उस अग्रणी प्रभु से (रयिम्) धन को (अश्नवत्) प्राप्त करता है। परन्तु उस धन को नहीं जो कि उसकी अवनति का कारण बन जाये। अपितु प्रभु का स्मरण करते हुए जो धन प्राप्त होता है, उसकी यह विशेषता है कि दिवे दिवे=दिन-ब-दिन पोषम् एव=यह हमारे पोषण का ही कारण बनता है। इससे हमारा किसी प्रकार का ह्रास नहीं होता। प्रभु स्मरण पूर्वक अर्जित धन मुझे विषय वासनाओं में प्रवृत्त करके निधन की ओर नहीं ले जाता। यह मुझे उत्कर्ष के लिए साधन बन कर धन्य जीवन वाला बनाता है।

इस धन को प्राप्त करके मैं यशसं=यश वाला बनता हूं। धन के मद में मैं ऐसे कार्य नहीं कर बैठता जो कि मेरे अपयश का कारण बन जायें। यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में धन का विनियोग करके मैं यशस्वी जीवन को प्राप्त करता हूं। इसके साथ ही यह धन हमें वीरवत्तमम्=अतिशयेन शक्ति-सम्पन्न बनाने वाला होता है। सामान्यत: धनी मनुष्य नौकरों से कार्य कराता हुआ स्वयं आराम का जीवन बिताने लगता है और परिणामत: निर्बल हो जाता है। क्रिया ही तो शक्ति को जन्म देती है और क्रिया का अभाव शक्ति क्षय का हेतु होता है। बायें हाथ की निर्बलता का कारण यही है कि यह दायें हाथ की तुलना में कम कार्य करता है। प्रभु स्मरण के साथ होने वाला धन हमें क्रियाशील बनाये रह कर सबल व वीर बनाता है।

भावार्थ :—प्रभु उपासक के लिए उस धन को देते हैं जो कि उपासक का दिन प्रतिदिन पोषण करने वाला होता है। यह धन उसे उत्तम कर्मों में

सहायक बनकर यशस्वी जीवन वाला बनाता है। और इस धन के होने पर उपासक स्वयं क्रियाशील बना रहता है और परिणामतः निर्बल न होकर वीरता सम्पन्न होता है।

४—'रक्षक' प्रभु

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।
स इद् देवेषु गच्छति॥ १ : १ : ४

गत मन्त्र के अनुसार प्रभु का स्तोता प्रभु से धन को प्राप्त करके उस धन को यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में विनियुक्त करता हुआ यशस्वी जीवन वाला बनता है। परन्तु 'कहीं यह यश उसके मस्तिष्क में अहंकार को न उत्पन्न कर दे' इसलिए वह प्रभु स्मरण करता हुआ कहता है कि अग्ने=ऐ सारे कार्यों के संचालक प्रभो! यं=जिस अध्वरं=हिंसा से शून्य, यज्ञं=श्रेष्ठतम कर्म को आप विश्वतः=सब ओर से परिभूः (To take care of, to govern) रक्षित करने वाले व व्यवस्थित करने वाले हों, सः=वही यज्ञ इत्=निश्चय से देवेषु=देवताओं में गच्छति=प्राप्त होता है। अर्थात् सब यज्ञ वस्तुतः आपके ही द्वारा होते हैं। देववृत्ति के पुरुष तो उन यज्ञों के माध्यम मात्र बनते हैं "निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।"

तथ्य यही है कि संसार में सारे उत्तम कर्म उस प्रभु द्वारा ही सम्पन्न होते हैं—जीव माध्यम मात्र है। अज्ञानवश जीव को उन कर्मों का गर्व हो जाता है 'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।' यह गर्व उन कर्मों की उत्तमता को समाप्त कर देता है। 'दानं दमश्च यज्ञश्च' इन गीता के शब्दों में यज्ञ दैवी सम्पत्ति में परिगणित हुआ है—देव यज्ञशील होते हैं। परन्तु यही यज्ञ अभिमान युक्त होकर किया जाने पर 'असुर' हो जाता है। असुर उन यज्ञों का गर्व करते हैं और कहते हैं कि 'यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्ये इत्यज्ञानविमोहिताः' यज्ञ करूँगा, दान दूंगा तब यश मिलने पर कितना आनन्द होगा। इस प्रकार ये असुर कर्तृत्व के अहंकार से मूढ़ बने रहते हैं। 'यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्' ये असुर केवल नाम के लिये दम्भपूर्वक इन यज्ञों को करते हैं। इसके विपरीत देव यज्ञ करते हैं और उसे प्रभु के अर्पण कर देते हैं ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।' इस प्रकार निर्मम व निरहंकार होकर ही वे प्रभु को प्राप्त करते हैं और परम शान्ति के जीवन वाले होते हैं।

भावार्थ :—हमारा जीवन यज्ञमय हो। उन सब यज्ञों को प्रभु से होता हुआ हम जानें। उत्तम कर्म करें—पर उनका हमें गर्व न हो। यही देव बन कर महादेव को प्राप्त करने का मार्ग है।

५—देव आगमन

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः ।
देवो देवेभिरागमत् ।। १ : १ : ५

गत मन्त्र की भावना को पुष्ट करते हुए कहते हैं कि अग्निः=वे सबको गति देने वाले प्रभु ही होता=सब यज्ञों के करने वाले हैं प्रभु कृपा से ही हम प्रभु से किये जाने वाले यज्ञों के माध्यम बनते हैं, और उन यज्ञों को पूर्ण होता हुआ देखते हैं। सर्वमहान् सृष्टि यज्ञ के होता तो वे प्रभु स्पष्ट ही हैं। कविक्रतुः=क्रान्तदर्शी होते हुए वे सब कर्मों के कर्ता हैं इस क्रान्तदर्शित्व के कारण ही उनके सृष्टि आदि कर्मों में अपूर्णता नहीं है 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्' प्रभु पूर्ण हैं, सो यह सृष्टि यज्ञ भी पूर्ण है। हमें अज्ञानवश कई वार इस सृष्टि में कई न्यूनतायें प्रतीत होने लगती हैं। भूकम्प आदि का आना बड़ा घातक लगता है। शरीर में कई ग्रन्थियाँ (Glands) निष्प्रयोजन प्रतीत होती हैं। कितने ही पदार्थों का प्रयोजन हमें अज्ञात है। पर ये सब बातें हमारे अज्ञान के कारण ही हैं। जितना-जितना हमारा ज्ञान बढ़ता जायगा, उतना-उतना हमें संसार पूर्ण प्रतीत होगा।

सत्य=वे प्रभु पूर्ण सत्य हैं—सत्यस्वरूप हैं। अथवा 'सत्सु भवः'=सज्जनों में उनका निवास है सर्वव्यापकता के नाते सर्वत्र होते हुए भी वे सज्जन हृदयों में ही प्रकाशित होते हैं। चित्रश्रवस्तमः=(चित्) वे प्रभु सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वश्रेष्ठ वेद-ज्ञान के देने वाले हैं। ज्ञान देने का उनका प्रकार भी अद्भुत है। हृदयस्थ होते हुए वे बिना किसी प्रयास के पवित्र हृदयों में उसका प्रकाश कर देते हैं। स्वयं वे प्रभु सर्वाधिक ज्ञान वाले हैं। (श्रवस=ज्ञान) निरतिशय ज्ञान के अधिष्ठान ही तो ब्रह्म हैं।

देव=ये सब दिव्य गुणों के पुञ्ज ज्योतिर्मय प्रभु देवेभिः=देवों के साथ आगमत्=आते हैं। हृदय में प्रभु का वास होने पर सब दिव्य गुण हमारे में स्वतः प्रादुर्भूत हो जाते हैं। अथवा दिव्य गुणों के द्वारा वे प्रभु हमारे में आते हैं। प्रभु-प्राप्ति का मार्ग यही है कि हम अपने आचरण को देव सदृश बनायें। हमारे व्यवहार असुरों जैसे न हों। जितना-जितना हम दिव्यता को अपनायेंगे उतना-उतना प्रभु के समीप होते जायेंगे।

भावार्थ—वे प्रभु 'अग्नि, होता, कविक्रतु, सत्य व चित्र श्रवस्तम' हैं। ये दिव्यगुणों के पुञ्ज प्रभु गुणों के धारण से ही प्राप्त होते, अथवा जितना-जितना हम प्रभु को धारण करने का प्रयत्न करते हैं, उतना-उतना हम दिव्य गुणों वाले बनते जाते हैं।

६—दाश्वान् का कल्याण

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।
तवेत्तत् सत्यमङ्गिरः ॥ १ : १ : ६

अंग=सम्पूर्ण वस्तुओं को प्राप्त कराने वाले ! (अगि गतौ, गति, प्राप्ति) अग्ने=उन्नति पथ पर ले चलने वाले प्रभो ! आप यत्=जो यह व्रत धारण करते हैं कि दाशुषे=दाश्वान् के लिए, देने वाले के लिए—प्रति आपके अपना अर्पण करने वाले के लिए—धन का त्याग करके आप में पूर्ण विश्वास रखने वाले के लिए—त्वम=आप भद्रं=भद्र को करिष्यासि करेंगे । तब-आपका तत्= वह व्रत, इत्=निश्चय=से सत्यम=सत्य है ।

'तद्ध भद्रं पुरुषस्य वित्तं तद् भद्रं गृहा भद्रं प्रजा भद्रं पशवो भद्रम' इस ब्राह्मण ग्रन्थ के वाक्य के अनुसार भद्र का भाव है—'जीवन के लिए आवश्यक धन, घर उत्तम सन्तान तथा गौ आदि पशु ।' दाश्वान् के लिए प्रभु इन सब चीजों को प्राप्त कराते हैं। इन चीजों के होने पर अकल्याणका प्रश्न ही नहीं रहा । यही अभ्युदय है। इस प्रकार प्रभु अपने इस व्रत द्वारा दाश्वान् के लिए इन वस्तुओं को प्राप्त कराते हुए उसके अंग-प्रत्यंग में इसका संचार करते हैं । इस जीवनी शक्ति को देते हुए, ऐ प्रभो ! आप सचमुच अंगिर 'अंगिरस्) अंगों में रस को संचारित करते हैं—जीवन को समृद्ध करते हैं ।

एक बालक माता पिता के प्रति अपना अर्पण कर देता है—अपनी इच्छा को उनकी इच्छा में मिला देता है, तो माता पिता उसका अधिक ध्यान करते हैं, उसके उत्तम निर्माण के लिए यत्नशील होते हैं, इसी प्रकार जब एक दाश्वान् पुरुष प्रभु के प्रति अपने को अर्पित कर देता है तो प्रभु का वह अधिक प्रिय होता है। प्रभु उसके लिए सब अभ्युदायिक वस्तुएँ प्राप्त कराते हैं । जीव से धारण किया गया कोई व्रत उसकी अल्पज्ञता व अल्पशक्ति के कारण टूट भी जाये परन्तु उस सर्वज्ञ व सर्व शक्तिमान् प्रभु का व्रत कभी टूटता नहीं । माता पिता अल्पज्ञतावश सन्तान को कभी कोई गलत वस्तु भी दे बैठते हैं परन्तु वे सर्वज्ञ प्रभु वस्तुओं भद्रको प्राप्त कराके अपने सन्तानों का भद्र ही करते हैं ।

भावार्थ—प्रभु अपने प्रति अर्पण करने वाले का अवश्य कल्याण करते हैं, उपासक को वे आवश्यक धन, गृह, उत्तम सन्तान व उत्तम गौ आदि पशु प्राप्त कराते ही हैं । प्रभु का यह व्रत सत्य है ।

७—प्रभु के समीप

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि ॥ १ : १ : ७

गत मन्त्र में वर्णित समर्पण को ही स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ऐ अग्ने = हमारे लिए सब आवश्यक पदार्थों को प्राप्त कराने वाले प्रभो ! वयं = हम दिवे दिवे = प्रतिदिन, दोषावस्तः रात्रि और दिन अर्थात् प्रातः सायं सन्धि वेला में वयं = हम धिया = बुद्धिपूर्वक कर्मोंके द्वारा आपके प्रति नमः भरन्तः = पूजा को प्राप्त कराते हुए (स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानवः) त्वा उप = आपके समीप एमसि = सर्वथा प्राप्त होते हैं ।

प्रतिदिन प्रातः सायं प्रभु चरणों में उपस्थित होना मानव जीवन के लिए इसलिए आवश्यक है कि इससे (क) पवित्रता की भावना बनी रहती है (ख) हमारे जीवन में प्रभु की शक्ति का प्रवाह होता है (ग) जीवन का उद्देश्य धन ही धन नहीं रह जाता और परिणामतः पारस्परिक प्रेम विनष्ट नहीं हो जाता। वस्तुतः शरीर के लिये जैसे 'भोजन आवश्यक है, और मस्तिष्क के लिये 'स्वाध्याय' ज़रूरी है उसी प्रकार हृदय के लिये इस प्रातः सायं प्रभु के 'ध्यान' की आवश्यकता है। भोजन के बिना शरीर निर्बल होकर रोगाक्रान्त हो जाता है। स्वाध्याय के बिना मस्तिष्क दुर्बल होकर ठीक विचार नहीं कर पाता। इसी प्रकार उपासना के बिना हृदय मलिन होकर वासनाओं से अभिभूत हो जाता है। भोजन शरीर को सबल बनाता है। स्वाध्याय मस्तिष्क को सम्पुष्ट करता है। इसी प्रकार हृदय को बलवान् बनाने के लिए उपासना की आवश्यकता है।

भावार्थ—हम प्रतिदिन प्रातः सायं प्रभु का उपासन करने वाले बनें। दिन भर प्रज्ञापूर्वक कर्मों को करते हुए उन कर्मों को हम प्रभु चरणों में अर्पित करें। प्रातः शक्ति की याचना करें कि हम बुद्धिपूर्वक पवित्र व सशक्त कर्मों को कर पायें तथा सायं उन कार्यों के प्रति अर्पित हुए करते निरहंकार बनें।

८—प्रभु दर्शन

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्
वर्धमानं स्वे दमे ॥ १ : १ : ८

गतमन्त्र के अनुसार प्रतिदिन प्रातः सायं प्रभु के समीप उपस्थित होने से हम प्रभु दर्शन के योग्य बनेंगे और देखेंगे कि वे प्रभु राजन्तम्-देदीप्यमान हैं—आदित्यवर्ण हैं—हजारों सूर्यों की दीप्ति के समान उनकी दीप्ति है।

तथा (राज to regulate) वे प्रभु ही सारे संसार को व्यवस्थित कर रहे हैं। उस प्रभु के प्रशासन में ही ये सब ग्रह नक्षत्र व नदियाँ आदि गति कर रही हैं। वे प्रभु ही अध्वराणां गोपाम्=सब हिंसा रहित यज्ञों के रक्षक हैं। प्रभु की कृपा से ही सब उत्तम कार्य पूर्ण हुआ करते हैं। 'जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्'-सब विजय उस प्रभु के अनुग्रह का ही परिणाम है। ऋतस्य दीदिविम=वे प्रभु सत्य के प्रकाशक हैं वेद ज्ञान द्वारा प्रभु ने सब सत्य विद्याओं का प्रकाश किया है। हमारे सब कर्त्तव्यों का प्रतिपादन भी प्रभु ने इस वेद द्वारा किया है—हमारे लिये सत्यमार्ग का दर्शन इस वेद में उपलभ्य है।

वे प्रभु स्वे दमे=अपने स्थान में अथवा अपने पूर्ण दान्त रूप में (दमन में वर्धमानम्=सदा से बढ़े हुए हैं। वस्तुतः वृद्धि दमन के अनुपात में होती है—जितना दमन उतनी वृद्धि। आदमी तो आदमी बनता ही दमन से है—आ=समन्तात्दमी=दमन करने वाला। हम इन इन्द्रियों को वश में करते हैं मन का दमन करते है और वृद्धि को प्राप्त करते हैं। प्रभु में दमन की पराकाष्ठा है—सो वृद्धि की भी वहाँ असीमता है। निरतिशय वृद्धि से युक्त हैं वे प्रभु। प्रभु को इस रूप में देखकर स्तोता को भी ध्यान आता है कि वह (क) ज्ञान से देदीप्यमान बनने का प्रयत्न करें—(ख) अपने जीवन को नियमित बनाये। (ग) इसका जीवन सदा यज्ञमय हो। (घ) सत्य के प्रकाश को देखने के लिए वह यत्नशील हो। (ङ) तथा मन व इन्द्रियों के दमन से वह शक्तियों की वृद्धि करने वाला हो।

भावार्थ—प्रभु 'देदीप्यमान यज्ञों के रक्षक—सत्य के प्रकाशक व सदा से बढ़े हुए हैं।' हम भी अपने जीवनों को ऐसा बनाने का प्रयत्न करें।

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥ १ : १ : ९

गत मन्त्र के अनुसार स्तोता प्रभु दर्शन करता हुआ कहता है कि ऐ अग्ने=हमारी अग्रगति व उन्नति के साधक प्रभो! सः=वे आप नः=हमें सूनवे पिता इव=पुत्र के लिए पति की तरह-सूपायनः=(सु उप अयनः) सुगमता से समीप प्राप्त होने वाले भवः=होइये। पुत्र को पिता से भय नहीं लगता—वहाँ वह प्रेम को अनुभव करता है और निःशङ्क हो पिता की गोद में पहुँचने की करता है। इसी प्रकार हम भी आपकी गोद में आ सकें। (सु+उपायन) पिता पुत्र के लिए उत्तमोत्तम उपहार प्राप्त कराता है। प्रभु भी हमारे लिए जीवन में उन्नति के लिये साधन भूत वस्तुओं को प्राप्त कराते हैं। हमें भी चाहिये कि उन वस्तुओं का ठीक प्रयोग करते हुए हम उन्नतिपथ पर आगे बढ़ें।

ऐ प्रभो ! सब आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त कराके नः=हमें स्वस्तये=कल्याण के लिए—उत्तम स्थिति के लिए (सु अस्ति) सचस्व=संगत करिये। आपसे दी हुई चीज़ों का ठीक प्रयोग करके हम उन्नत होते चलें। अथवा आप हमें प्राप्त होइये ताकि हमारी उन्नत स्थिति बनी रहे। आपसे दूर होते ही हम मार्ग भ्रष्ट हो जाते हैं। आपका स्मरण हमारी जीवन की गाड़ी को पथभ्रष्ट नहीं होने देता। जैसे पिता की दृष्टि में रहने वाले बालक का आचरण ठीक बना रहता है, उसी प्रकार प्रभु के सामीप्य में हमारा जीवन उत्तम मार्ग में ही स्थित रहता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे लिए उसी प्रकार सुगमता से प्राप्त होने योग्य हों, जैसे पिता पुत्र के लिए। प्रभु के साथ हमारा मेल हो ताकि हमारी जीवन स्थिति उत्तम बनी रहे।

सम्पूर्ण सूक्त का निचोड़ यही है कि हम प्रभु की उपासना करें—प्रभु हमें कल्याण के लिए संगत करें।

दयानन्द

किसी ने तो बाईबिल, किसी ने कुरान पै ही,
'आँख मींच के ईमान लाओ' ये सुझाया था।
किसी ने पुराण, भागवत, किसी ने 'प्रकाश',
धर्म-ग्रन्थ हनुमान चालीसा बताया था॥
किसी ने केवल ज्ञान, किसी ने केवल कर्म,
किसी ने केवल ढोल, भक्ति का बजाया था।
किन्तु, स्वामी दयानन्दजी ने वेद द्वारा, ज्ञान,
कर्म भक्ति तीनों का महत्व दरसाया था॥
पाला ब्रह्मचर्य व्रत वीर हनुमान ने था,
अपने आराध्यदेव राम के रिझाने को।
सुनते हैं पाला ब्रह्मचर्य परशुराम ने था,
आततायी क्षत्रिय समाज के नसाने को॥
पाला ब्रह्मचर्य भीष्मपितामह ने 'प्रकाश',
पूज्य पिता शान्तनु को सुखिया बनाने को।
किन्तु, पाला ब्रह्मचर्य देव दयानन्द ने था,
कोटि कोटि मानवों के संकट मिटाने को॥

—पं० प्रकाशचन्द कविरत्न

ऋग्वेद

यजुर्वेद

॥ ओ३म् ॥

आज का संकल्प

१ आज मैं प्रसन्न चित्त रहूँगा।
२ आज अपने शरीर का ध्यान रखूंगा।
३ आज मैं किसी चिन्ता को अपने पास फटकने नहीं दूंगा।
४ आज मैं विचारों को बहुत शुद्ध रखूंगा और उन्हें भटकने नहीं दूंगा।
५ आज मैं क्रोध नहीं करूँगा और किसी को कोई कटु शब्द नहीं कहूँगा।
६ आज मैं अपनी सब वर्तमान समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करूँगा।
७ आज मैं किसी के साथ छल, कपट, धोखा या निन्दा नहीं करूँगा।
८ आज मैं स्वाध्याय अवश्य करूँगा और उपयोगी बातें सीखूंगा।
९ आज मैं कोई झूठ नहीं बोलूंगा।
१० आज मैं राष्ट्रहित के लिए सजग रहूँगा।

ईश्वर मेरी सहायता करे

—प्रेषक—
सुपर फाइन केमिकल वर्क्स
कानपुर

सामवेद

अथर्ववेद

इसे काट कर मेज़ पर रखें।

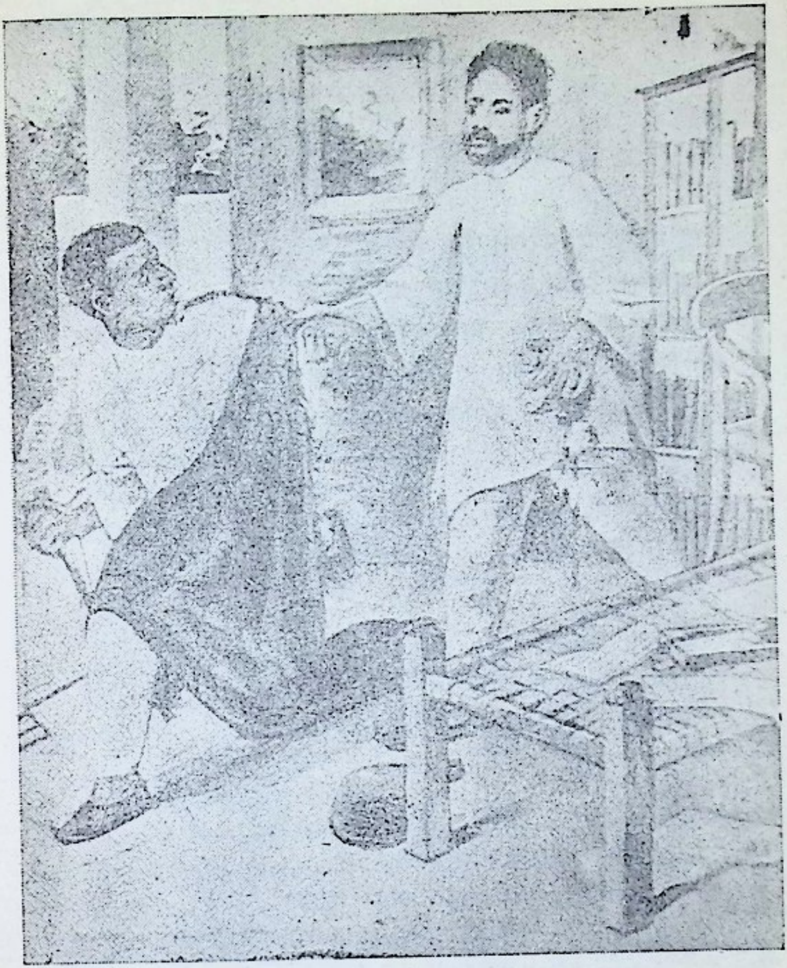

वैदिक धर्म प्रचार के लिए शहीद लेखराम ने पेट में छुरा खाया था। उनका धरती पर गिरा हुआ रक्त हमें आज पुकार रहा है…सुनो…वह कह रहा है, धरती को आर्य बनाओ, वेद का प्रकाश फैलाओ!

❀ ❀ ❀

मैं कहता हूँ....

गीत गाना, मुस्कराना बन्द करो।
गुनगुनाना, स्वप्न देखना बन्द करो।
समय आ गया है अब काम करने का।
नए निर्माण करने का
इसलिए कहता हूँ काम करो।

* * *

फसल खड़ी है पक कर,
उसे कौन काटे ?
वे या तुम ?
जो काटेगा वह जीतेगा,
उसी का झण्डा ऊंचा लहराएगा,
इसलिए नारे मत लगाओ,
पकी फसल काटने की तैयारी करो

* * *

मेरा मन महल बनाने को नहीं करता,
मुझे झोंपड़ियों से प्यार है।
शायद इसलिए कि "भारत" झोंपड़ी में रहता है।
महल प्रतीक बन गए हैं "अ-भारत" के,
इसलिए मैंने सदा महलों के नहीं, झोंपड़ी के स्वप्न देखे हैं।
भारत से प्यार है तो झोंपड़ी से प्यार करो, उन्हें सजाओ !

—भारतेन्द्र नाथ

गो-दुग्ध

★ गोविन्द जी

> अमृत क्या है ? इसका उत्तर यदि देना हो तो हम कहेंगे
> वह है भूपर—गोदुग्ध

'महाभारत' में एक कथा आती है कि जब धर्मराज युधिष्ठिर प्यास से व्याकुल होकर एक तालाब के समीप जल पीने के लिए गये, तो वहाँ एक वृक्ष पर रहने वाले यक्ष ने उनसे तीन प्रश्न किये। उनमें से एक प्रश्न यह भी था कि 'अमृत' किम्' अर्थात् अमृत क्या है ? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि 'गवामृतम्' अर्थात् गोदुग्ध ही 'अमृत' है। यक्ष उनके उत्तर से सन्तुष्ट हो गया और उसने उन्हें जल पीने की आज्ञा दे दी।

'महाभारत' में ही शान्तिपर्व में कृतघ्न गौतम की एक कथा है। कथा के अन्तिम भाग का सारांश यह है कि गौतम द्वारा मारे गये राज धर्मा के अन्तिम संस्कार के अवसर पर जब चिता में अग्नि प्रज्वलित की गयी तभी सुरभि देवी ने प्रकट होकर अमृत वर्षा की और राजधर्मा पुन: जीवित हो गया कहते हैं कि वह अमृत पेय गाय का दूध ही था। कथा काल्पनिक होने पर भी गो दुग्ध का महत्व बता रही है।

स्वस्थ जीवन से सम्बन्ध

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, शास्त्रों में गोदुग्ध की 'अमृत' संज्ञा है। यह संज्ञा यों ही नहीं दे दी गयी है। "स्वस्थ रहने के लिए हमारे दैनिक भोजन में गाय के दूध का सर्वप्रथम स्थान है" इस कथन को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वस्तुत: गाय का दूध ही एक ऐसा भोजन पदार्थ है जिसके सेवन से हम स्वस्थ एवं सुखमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं और सभी प्रकार की व्याधियों से बच सकते हैं। यों तो भैंस और बकरी के दूध का भी भोजन रूप में उपयोग किया जाता है। किन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से गाय का दूध जितना उपयोगी एवं गुणद होता है, उतना अन्य का नहीं। बकरी का दूध कुछ अंशों में गाय के दूध की समता कर सकता है, लेकिन गोदुग्ध की तुलना में

उसकी उपलब्ध मात्रा बहुत ही कम होती है। भैंस का दूध तो, कुछ दुग्ध विशेषज्ञों के अनुसार स्वास्थ्य के हानिकारक होता है। इसी से प्रायः भैंस के दूध का विशेष उपयोग उसके प्रकृत रूप में न करके उसका घी तथा दही बना कर किया जाता है।

दैनिक उपयोग

दैनिक भोजन के रूप में गाय के दूध का उपयोग तीन रूपों में किया जाता है। एक तो उसके प्रकृत रूप में, दूसरा दही बनाकर और तीसरा घी के रूप में मक्खन भी घी का एक रूप ही है। यों तो दूध, दही तथा घी का उपयोग सभी ऋतुओं से निस्संकोच किया जा सकता है और तीनों ही स्वास्थ्य के लिए उपयोगी होते हैं, किन्तु विशिष्ट ऋतुओं में इनकी लाभ प्रदान करने की क्षमता बढ़ जाती है। जहाँ घी और दूध जाड़े के ऋतु में विशेष लाभप्रद होते है, वहाँ दही का उपयोग गर्मी की ऋतु में विशेष लाभदायक होता है। दही का उपयोग बरसात के मौसम में वर्जित है। तुरन्त का दुहा हुआ ताजा दूध स्वादिष्ट तथा स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त ही हितकारी होता है। घी की अपेक्षा मक्खन शीघ्र पचने वाला तथा अधिक गुणकारी होता है, क्योंकि घी में बहुत से तत्व नहीं रहते जब कि मक्खन में वे सुरक्षित रहते हैं। कमजोर पाचन शक्ति वालों के लिए घी हानिकारक होता है। दूध प्रत्येक उम्र के व्यक्तियों के लिए हर मौसम में उपयोगी होता है।

आयुर्वेदीय गुण

जैसा कि पीछे कहा गया है, दूध ही अकेला एक ऐसा पदार्थ है जिसका पान कर मनुष्य स्वस्थ एवं सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता है। इसमें वे सभी तत्व होते हैं जो शरीर को पूर्ण स्वस्थ एवं निरोग रखने के लिए आवश्यक हैं। इसलिए आयुर्वेद के ग्रंथों में इसके गुणों की चर्चा विशद रूप से की गयी है और इसे बालक, युवा एवं वृद्ध सब के लिए अमृत सदृश बताया गया है। 'भावप्रकाश' नामक आयुर्वेद ग्रन्थ में एक स्थान पर लिखा है—"वृद्धावस्था समस्त रोगों का घर है और वृद्धावस्था के लिए गाय का दूध अमृत के सदृश है।" इसी ग्रंथ में पुनः एक स्थल पर गोदुग्ध के गुणों का वर्णन करते हुए इसके लेखक ने लिखा है—"दूध दोपहर के पहले वीर्यवर्द्धक अग्निदीपक, दोपहर को बलकारक, कफ-नाशक, पित्त को हरने वाला और मन्दाग्नि का नाश करने वाला होता है। बाल्यकाल में शरीर के तत्वों की वृद्धि करने वाला तथा वृद्धावस्था में वीर्यवर्द्धक एवं क्षयनाशक होता है। रात्रि में सेवन करने से यह अनेक रोगों को दूर करता है।" इसी प्रकार 'कश्यप संहिता' में लिखा है—"दूध से बढ़कर जीवन बढ़ाने वाला कोई आहार नहीं।"

गाय के घी के संबंध में एक आयुर्वेद ग्रंथ प्रणेता ने लिखा है—"गाय का घी गुणों में सर्वश्रेष्ठ है। इसका प्रभाव शीतल होता है। यह वात, पित्त तथा विष का नाश करने वाला होता है। इसके सेवन से प्रतिभा सौन्दर्य, मुख की काँति एवं तेज़ बढ़ता है। यह नेत्रों की ज्योति एवं शरीर की सामर्थ्य को बढ़ाने वाला होता है।"

दुग्धों के आयुर्वेदीय आहारोपयोगी गुणों का सबसे अच्छा वर्णन 'चरक संहिता' में मिलता है। उसमें ८ प्रकार के दूधों का उल्लेख है। चरक महोदय गाय के दूध के विषय में लिखते हैं—गाय के दूध में दस गुण हैं। यह स्वादिष्ट ठण्डा, कोमल, चिकना, गाढ़ा, सौम्य, लसदार, भारी बाहरी प्रभाव को देर से ग्रहण करने वाला तथा चित्त को प्रसन्नता देने वाला होता है।"

उपलब्ध तत्व

आधुनिक वैज्ञानिकों ने गाय के दूध का तात्विक विश्लेषण किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि गाय के दूध के समान गुणकारी एवं स्वास्थ्यकारक अन्य कोई पदार्थ नहीं। इसमें सैकड़ों प्रकार के उपयोगी तत्व पाये जाते हैं। इसके ८ प्रोटीनों में १९ एमीनो ऐसिड, ११ चिकने एसिड, ६ विटामिन, ८ जीवाणुहीन पाचक रस, २५ धातु तत्व, २ चीनी, ४ फास्फोरस के यौगिक, १९ नाइट्रोजन के यौगिक तथा अन्य बहुत से तत्व पाये जाते हैं।

गाय के दूध के पोषक तत्वों को १० भागों में बाँटा जा सकता है। वे १० भाग इस प्रकार हैं :—

(१) जल तथा ठोस तत्व—दूध में जल ८७·१ प्रतिशत तथा अन्य ठोस तत्व १२. ९ प्रतिशत होते हैं।

(२) अन्य तत्वों में घृत उनके ३.९ प्रतिशत पाया जाता है, जिसमें ११ फैटी एसिड रहते हैं।

(३) लवण तथा क्षार ७५ प्रतिशत पाये जाते हैं, जिनकी संख्या १६ है। ये लवण तथा क्षार पोटैसियम सोडियम, मैगनिशियम, जस्ता, लोहा, अल्मूनियम, ताँबा, मैंगनीज आदि के क्लोराइड, फास्फेट, तथा कार्बोनेट आदि हैं।

(४) प्रोटीन, केसीन तथा एल्ब्यूमेन ३.५६ प्रतिशत पाया जाता है।

(५) दुग्ध शर्करा (मिल्क सुगर तथा ग्लूकोज) ४.९ प्रतिशत होता है।

(६) ८ प्रकार के पालक रस तथा इन्जाइम्स पाये जाते हैं।

(७) विटामिन ए, ५-१, डी, ई, बी१, बी२, बी४, तथा सी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

[शेष पृष्ठ ७१ पर]

पौराणिक भाइयों ने

नहले पर दहला

पुस्तक में महर्षि दयानन्द और आर्य समाज को घृणित गालियाँ देने का दुस्साहस किया

इस गन्दी पुस्तक को आशीर्वाद दिया अपने को शङ्कराचार्य लिखने वाले श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ ने। "जन-ज्ञान" इस पुस्तक का मुंह तोड़ उत्तर छाप रहा है—

शास्त्रार्थ महारथी पं० शान्तिप्रकाश जी की सशक्त लेखनी से लिखित—

"दहला पागल हो गया"

हज़ार की संख्या में मंगाकर देश को बर्बाद करने वाले, व्यक्तियों को राह बताइए

मूल्य ५० पैसे .. .. ४०) सैकड़ा

★

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५९७ हरध्यानसिंह रोड, नई दिल्ली-५

रामेश्वर 'काम्बोज'

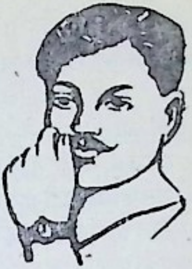

मालती कुसुम

'आजाद'

कुसुम डाल पर खिल करके अपनी सौरभ भरी साँसों से पवन को पवित्र कर देता है। उसकी दो ही गतियाँ होती हैं—या तो वह सबके सिर आँखों पर रहता है या वन प्रदेश में ही नष्ट हो जाता है। धूल में गिरकर माँ वसुधा के सीने से चिपक जाता है। कोई उसके प्रस्फुटन को जान भी नहीं पाता। परन्तु उसकी मोहक मुस्कान रजकणों को नष्ट प्रायः होने तक चुनौती देती रहती है। जिसने अपने परिमल से वीर प्रसूता भारत माँ को महका दिया, उस नरपुंगव का जन्म कान्यकुब्ज ब्राह्मण पंडित सीताराम जी के यहाँ हुआ जो उन्नाव के बदरका ग्राम को छोड़कर मध्यप्रदेश के भावरा ग्राम में रह रहे थे। जीविका की समस्या सामने थी। निर्धनता के बीच ही उस ज्योति पुंज चन्द्रशेखर आजाद का लालन पालन हुआ। ये सीतारामजी की पाँचवीं सन्तान थे। आजाद ने सुन रखा था कि काशी में ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं जो अपने खर्चे पर छात्रों को पढ़ाते हैं। फिर क्या था, ये घर से पलायन कर गये। वहाँ पर 'अमर कोष' और लघुसिद्धान्त कौमुदी का अध्ययन किया। परन्तु आजाद का मन इसमें खिला नहीं। स्वभाव शुरु से ही उदण्ड था। काशी में असहयोग आन्दोलन चल रहा था। १९२१ में आजाद भी उसमें कूद पड़े। उसी समय इन्होंने एक सिपाही पर हमला कर दिया क्योंकि वह एक सत्याग्रही को बूट की ठोकर से मार रहा था। आज़ाद को अदालत के सामने पेश किया गया।

मजिस्ट्रेट ने पूछा—

'तुम्हारा नाम' ?

'आजाद'

'बाप का नाम' ?

'स्वाधीन' !

'घर' ?

'जेल खाना'।

सुनकर मजिस्ट्रेट कुढ़ गया। उसने आजाद को पन्द्रह बेंतों की सजा दी। आजाद प्रत्येक बेंत के साथ 'गाँधीजी की जय' के नारे लगाता रहा। सोलह वर्ष का कोमल शरीर खाल उघड़ गई ; खून टपकने लगा परन्तु मुखमण्डल पर दुःख की छाया भी नहीं थी। यही थी वह आधार भूमि जिसने चन्द्रशेखर को साम्राज्य शाही के विरुद्ध टक्कर लेने के लिए उकसाया। परन्तु उसका घर कभी जेलखाना नहीं हुआ। बिस्तर गर्म मिला परन्तु आजाद नहीं। चौरी चौरा के हत्याकाण्ड ने उसके मस्तिष्क पर ऐसी छाप अंकित की कि महात्मा गाँधी की जय बोलने वाला नन्हा बालक ही उसके सिद्धान्तों का कट्टर विरोधी हुआ। जो वस्तु दूसरे की है हम उसे आवश्यकता पड़ने पर माँग सकते हैं पर जो वस्तु हमारी है उसे हम भिक्षा के रूप में क्यों माँगें, हम उसे बलपूर्वक लेंगे। आजादी के सम्बन्ध में यह विचार था 'आजाद' का। बाद में वे रामप्रसाद 'बिस्मिल' के सम्पर्क में आये और सहारनपुर से चलने वाली ट्रेन को काकोरी के निकट लूट लिया। अशफाकुल्ला इनमें सबसे अधिक शक्तिशाली थे। इस डकैती में रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आजाद, अशफाकुल्ला मन्मथनाथ गुप्त, राजेन्द्र लाहिड़ी शचीन्द्रनाथ बख्शी, मुकुन्दीलाल, मुरारीलाल, बनवारीलाल और केशव चक्रवर्ती ये दस व्यक्ति थे। यह डकैती ९ अगस्त १९२५ को हुई।

पकड़े जाने पर 'बिस्मिल' को फाँसी हो गई। अब संगठन का काम आजाद के कन्धों पर आ पड़ा। उन्होंने कहीं भी दुर्बलता नहीं दिखलाई। खतरे के काम में स्वयं अवश्य ही हिस्सा लेते थे। उन्होंने नेता बनने की कोशिश नहीं की। यही कारण था कि यशपाल, भगवानदास महौर भगवतीचरण बोहरा, भगतसिंह इत्यादि उनका बहुत आदर करते रहे। भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त बम्ब डालकर असेम्बली से भाग निकलें, ये आजाद का सुझाव था। परन्तु भगतसिंह भारतीय जनता की सहानुभूति देखना चाहते थे। गाँधीजी से उनको छुड़ाने के लिए बहुतों ने कहा। बेचारे महात्माजी ठहरे सिद्धान्त प्रिय। वे जनता की माँग का दबाव सरकार पर डालना अनुचित समझते थे लेकिन सरकार के शराबबन्दी कानून को जनता पर लादना उचित !

निशानेबजी—एक बार आजाद लैंसडॉन के पास पहाड़ियों पर भवानीसिंह रामचन्द्र, मास्टर छैल बिहारीलाल तथा विश्वम्भरदयाल इत्यादि को निशाना लगाना सिखा रहे थे सबने अनुरोध किया कि वे दूरस्थित वृक्ष के पत्ते पर निशाना लगायें। एक के बाद एक पाँच गोलियाँ छोड़ीं। परन्तु सब साथी

बोले, 'निशाना नहीं लगा' कहते रहे। इस पर आजाद बोले—'यह कैसे हो सकता है कि मेरी गोली चूक जाये।' सबने फिर पास जाकर देखा। पत्ते पर पाँचों गोलियों के अलग-अलग निशान थे।

आजाद और चूड़ियाँ—एक बार कुछ लड़कियों ने आजाद को चाँदनी चौंक में घण्टाघर के पास रोक लिया और अनुरोध किया, "या तो चूड़ियाँ पहनकर घर बैठो या देश की सेवा करो।'

'मुझसे देश सेवा नहीं होगी'—आजाद ने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया—'जब ऐसी ही इच्छा है तो मुझे चूड़ियाँ पहनादो।' एक के बाद एक लड़की आजाद चूड़ियाँ पहनाने का प्रयास करने परन्तु असफल रही। अन्त में लज्जित होकर बोली—'इनसे बड़ी चूड़ियाँ बाजार में नहीं मिलेंगी। जाओ देश सेवा करो।' आजाद मन ही हँसते हुए आगे बढ़ गये। वे बिचारी क्या जानती थीं कि यही चन्द्रशेखर आजाद है।

नारी और कल्पना—'सुशीला दीदी को लेकर कोई क्या करेगा मरगिल्ला-सा जिस्म है, दिमाग ही तो सब कुछ नहीं होता'—ये थे आजाद के शब्द अपनी सहयोगिनी सुशीला दीदी के प्रति। स्त्री प्रसंग से उन्हें बहुत चिढ़ थी कि यदि कोई जिक्र छेड़ देता तो कह उठते—फिर वही चुम्बक वाली बात, जिसे लगा ले डूबा।' बाद में उनकी धारणा में कुछ परिवर्तन आ गया क्योंकि क्रान्तिकारी कार्यों में जो विशेष भाग दुर्गा भाभी (पत्नी भगवतीचरण) सुशीला दीदी ने पूर्ण किया उसके लिए वे श्रद्धानत थे। सरल चित्त होने के कारण वे प्रत्येक की बात पर विश्वास कर लेते थे। कुछ साथियों ने उनको श्री यशपालजी (प्रसिद्ध उपन्यासकार) के विरुद्ध भड़का दिया। असलियत जान लेने पर फिर वैसे ही हो गये। यह विरोध प्रकाशवती (अब यशपालजी की धर्मपत्नी) को लेकर हुआ। किन्तु बम्ब बनाने के कार्य में जो सहयोग प्रकाशवती ने दिया उसकी किसी को आशा न थी। आजाद उसे स्नेह में 'लटूनी' तथा अन्य साथी 'कामरेड' कहते थे।

अपनी जीवन संगिनी की जो कल्पना वे करते थे वह भी बड़ी अजीब थी। वे कभी कह उठने —'पहाड़-पहाड़ घूम रहे हों एक राइफल उसके कन्धे पर हो और एक हमारे कन्धे पर। कारतूसों की बोरी साथ हो। दुश्मनों से घिर जाये। वह राइफलें भरती जाये और हम दनादन गोली चलाते जायें।' भगवती बाबू की शहादत से दुर्गा भाभी को क्या सभी साथियों को बड़ी चोट पहुँची। उस समय दुर्गा भाभी से जो शब्द आजाद ने कहे वे उनकी नारी के प्रति अगाध श्रद्धा व्यक्त करते हैं—'तुम हम सब की माँ बहिन हो। तुमने पार्टी के लिए

सर्वस्व न्यौछावर किया है। हम सब तुम्हारे ऋणी हैं तुम्हारे प्रति अपने कर्त्तव्य को कभी नहीं भूलेंगे।'

साण्डर्स की हत्या—साइमन कमीशन के विरोध में लाला लाजपतराय के नेतृत्व में जुलूस निकाला गया। 'साइमन कमीशन गो बैक' के नारे लगाये गये। काले झण्डे दिखाये गये। जब कमीशन को आगे बढ़ने का मार्ग नहीं मिला तो पुलिस सुपरिण्टेंडेण्ट स्काट की आज्ञा से जुलूस पर हमला किया गया। डी० एस० पी० साण्डर्स की लाठी से लालाजी को बहुत चोट आई। उस समय यशपाल, भगवतीचरण तथा सुखदेव भी साथ थे। १७ नवम्बर १९२८ को लालाजी का देहान्त हो गया। योजनानुसार भगतसिंह और राजगुरु ने साण्डर्स को उस समय गोली मार दी जिस समय वह अपनी लाल मोटर साइकिल पर दफ्तर से फाटक तक पहुँचा। दोनों अपना काम करके डी० ए० बी० कालिज के हास्टिल में पहुँच गये। इनका पीछा करने के लिए चन्दनसिंह गालियाँ देता हुआ आगे बढ़ा। आजाद अपनी माउलर पिस्तौल साधे पहले से ही खड़े थे। चन्दनसिंह को वहाँ ठण्डा करके भगतसिंह और राजगुरु सहित मजंग की तरफ चले गये। और उस रात जयगोपालदास रुपये उधार लाया तब जाकर सब लोगों को भोजन मिल सका।

अन्तिम क्षण—बाधाओं का सामना करने में यह वीर सदा अडिग रहा। इसके स्वभाव के बारे में क्रान्तिकारी-दल के सहयोगी सुरेन्द्र शर्मा की पत्नी का कथन—'भैया बड़े भोले स्वभाव के थे। खाने में कभी संकोच नहीं, जिस वस्तु के खाने की इच्छा हुई निःसंकोच कहकर बनवाते थे तथा बड़ी तबियत से भर पेट खाते थे।' उनकी सरलता का द्योतक है। उनकी साँस की प्रत्येक गति में देश प्रेम का स्रोत बहता था। आजाद अक्सर गाया करते—

'जब कफस से लाश निकली, उस बुते नाशाद की।
इस कदर रोया कि, हिचकी बँध गई जल्लाद की॥
कमसिनी का खेल खेला, नाम ले लेकर मेरा।
हाथ से तुर्बत बनाई, पैर से बरबाद की॥
शाम का है वक्त कबरों को न ठुकराकर चलो।

और फिर २७ फरवरी १९३१ को दिन के दस बजे! किसी द्रोही से पुलिस को सुराग मिल गया। उस समय वे इलाहाबाद के अल्फ्रेडपार्क में बैठे थे। पार्क का घेरा डाल लिया गया। खूब जमकर लड़ाई हुई। अन्त में बची हुई एक गोली से अपना काम तमाम कर लिया और उसका पालन किया जो आजाद ने भगतसिंह से कहा था—'फाँसी पर लटककर बन्दरिया का नाच नचाना मुझसे नहीं आता। किसकी माँ में दम है जो मुझे गिरफ्तार कर ले'—

और वे जीते जी गिरफ्तार नहीं हुए। उनका अन्तिम समय का फोटो इंग्लैण्ड की एक पुस्तक में छपा था जो अब भारत में प्रचलित है।

श्रद्धाञ्जली—ऐसे नर नाहरों के निर्वाण उत्सव नहीं होते। शताब्दियाँ नहीं मनाई जातीं, उनके नाम पर नगर नहीं बसाये जाते तो कोई बात नहीं। वेमरे ही कहाँ है! वे तो दिनप्रतिदिन अपनी पुण्य-आत्मा के साथ जीवित हैं। उनके डाक टिकट न चलाये जायें तो क्या हुआ। उनकी तो सम्पूर्ण मूर्ति जन हृदयों में विराजमान है उनके गीत नदियों की लहरों के साथ थिरक रहे हैं। उनके लहू की बून्दें परमाणु बम्ब की तरह जागरूक हैं। मैं अपने उस शहीद को शत-शत प्रणाम करता हूँ क्योंकि वह ऐसा फूल है जो केवल सिर आँखों पर रह सकता है। बिल्कुल मालती कुसुम जैसा भृतृहरि ने कहा—

"मालती ,कुसुमस्येव द्वे गती, तो मनस्विनः।
मूर्ध्निवा सर्वलोकस्य शीर्यंते वने एव वा॥

⁂

विनय

(१)
मैं बन जाऊँ मन का स्वामी, ऐसा बल दे अन्तर्यामी।
और नहीं कुछ चाह नाथ अब, बन जाऊँ तेरा अनुगामी॥
(२)
तू आनन्द शान्ति का सागर, मुझ में निज आनन्द शान्ति भर।
तेरा चिन्तन हो निशिवासर चिन्ता और न होवे स्वामी॥
(३)
तव महिमा का पार न पाऊँ, तव चरणों में सीस नवाऊँ।
मैं प्रभु तेरा ही बन जाऊँ, रहूं न लोभी क्रोधी कामी॥
(४)
तेरी करुणा दृष्टि रहे नित, हो अनुरक्त सदा तुझ में चित।
लौकिक वस्तु न कर दें मोहित, बना रहूँ मैं सच का हामी॥
(५)
सब में तेरा हाथ निहारूं तुझ पर तन-मन-धन मैं वारूं।
दुर्गुण गण को देव निहारू तेज ओज साहस दे स्वामी॥

—धर्मदेव "विद्यामार्तन्ड"

★

और अब छप कर तैयार हैं—

एक ऐसी पुस्तक

★ जो लाखों की संख्या में बंटनी चाहिए

★ जो प्रत्येक अंग्रेजी पढ़े-लिखे तक पहुँचनी चाहिए।

★ विदेशों में हजारों भेजनी चाहिए।

Teachings of Swami Dayananda

हमने तैयार कर दी : अब देखनी है

आप की ऋषि भक्ति

दयानन्द का नाम लेने वाले प्रत्येक
आर्य भाई और बहन का कर्तव्य
है कि इसे मंगाएँ और बाँटें

मूल्य ७५ पैसे

५५) सैकड़ा

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५९७, हरध्यानसिंह मार्ग, करौल बाग, नई दिल्ली-५

सामयिक

महर्षि दयानन्द और साम्प्रदायिक सद्भाव

—जयदेव आर्य, एम० ए०

आज जब हमारा प्रिय देश सर्वत्र साम्प्रदायिक उपद्रवों की अग्नि में धू-धू कर जल रहा है और देश के विभिन्न धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक नेता और बुद्धिजीवी साम्प्रदायिक सद्‌भाव की स्थापना के विभिन्न उपाय प्रस्तुत कर रहे हैं, तब, ऐसे समय में इस युग की महान् विभूति महर्षि दयानन्द के विचार विशेष रूप से मननीय हैं। कारण? उनमें कुछ ऐसी मौलिक एवं महत्त्वपूर्ण बातें हैं जो अन्यत्र कहीं भी हमें दृष्टिगोचर नही होतीं, अतः आवश्यक है कि देश के निष्पक्ष एवं ईमानदार मनीषी उन पर गम्भीरता पूर्वक विचार कर सत्य-निर्णय पर पहुँचने का प्रयास करें।

आज सामान्यतया यह बात बड़े जोर-शोर से दुहरा दी जाती है कि सभी धर्म एक समान हैं, सत्य हैं और एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं। सभी धर्मों से अभिप्राय लिया जाता है इस्लाम, ईसाइयत, हिन्दुत्व, बौद्ध, जैन आदि मतमतान्तर।' महर्षि दयानन्द का इसी विषय पर भारी मतभेद है। वह इन्हें धर्म न मानकर मतमतान्तर मानते हैं। उनका कहना है कि यदि ये सब एक समान ही हैं तो फिर इनमें विवाद क्यों है? अतः मानना पड़ेगा कि ये सब 'एक समान नहीं हो सकते और उनमें कुछ न कुछ ऐसी बातें अवश्य हैं जो एक दूसरे से विपरीत हैं। हां! यह अवश्य है कि कुछ बातों में मौलिक रूप से वे एक समान अवश्य है। जैसे महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में एक सत्यधर्म के जिज्ञासु के प्रश्न के उत्तर में सभी मतवादियों के मुख से यों कहलवाया है 'सब एक स्वर होकर बोले कि सत्य-भाषण में धर्म और असत्य भाषण में अधर्म हैं। वैसे ही विद्या पढ़ने, ब्रह्मचर्य करने, पूर्ण युवावस्था में विवाह, सत्संग, पुरुषार्थ, सत्य व्यवहार आदि में धर्म है और अविद्या ग्रहण, ब्रह्मचर्य न करने, व्यभिचार करने, कुसङ्ग, आलस्य, असत्य व्यवहार, छल, कपट, हिंसा, परहानि करने आदि कर्मों में···अधर्म।" महर्षि दयानन्द इस प्रकार के सामान्य नियमों को 'मानव-धर्म' के नाम से

कहना पसन्द करेंगे, जिस प्रकार कि मनुने अपने धर्म के लक्षण में दस नियमों को धर्म कहा है। पर इस मानव-धर्म के सब मतों में समान रूप से उपलब्ध होने के कारण उन सब मतों को एक समान उसी प्रकार नहीं कहा जा सकता जैसे कीट पतंगों से लेकर मनुष्य तक आँख, नाक, पेट आदि अंग सभी में समान रूप से पाए जाने पर भी उन्हें एक नहीं कहा जा सकता। कुछ समानताएं विभिन्न जीव-श्रेणियों को एक सिद्ध नहीं करतीं अपितु उनमें पाई जाने वाली विभिन्नताएँ उन्हें विभिन्न सिद्ध करती हैं। अतः इन सब मतों को तब तक एक नहीं कहा जा सकता जब तक वे सब मतवादी इन विभिन्नताओं को अपने धर्म की परिधि से निकाल नहीं देते, उन्हें अपने धर्म का आवश्यक अङ्ग मानने से इन्कार नहीं कर देते। महर्षि दयानन्द ने ठीक यही बात १८५७ में दिल्ली दरबार के अवसर पर सर सय्यद अहमद खाँ आदि विभिन्न मतावलम्बियों के सामने रखी थीं जो कि मानी नहीं गई। अब प्रश्न यह है कि क्या आज के ये विभिन्न नेता सभी सम्प्रदाय के लोगों से यह बात मनवाने के लिए कोई प्रयत्न करते हैं? या पहले कोई ऐसा प्रयत्न किया है? या उनमें यह सच्ची बात कहने का साहस है? क्या वे इस मानव-धर्म के विरोधियों का मुकाबला करते या उनकी निन्दा करने को उद्यत हैं? उत्तर स्पष्ट नकारात्मक है।

इस बात को तनिक स्पष्ट करने की आवश्यकता है। 'अहिंसा धर्म है' इस बात को सभी मानते हैं। अब सब मतावलम्बियों से कहिए कि आप लोग धर्म के नाम पर पशुओं की हिंसा बन्द कर दीजिए और ऐसी पुस्तकों को धर्मग्रन्थ मत मानिये जिनमें पशुओं या मनुष्यों की बलि देना धर्म बताया गया हो या कम से कम उन २ पुस्तकों से हिंसा की शिक्षा देने वाले अंश अवश्य निकाल फेंकिए, तो क्या हिन्दु देवी-देवता पर बलि चढ़ाने और मुसलमान 'हलाल बकरा' खाने और गौ की बलि देने तथा सिख 'झटका' खाने और ईसाई भी बलि देने और बौद्ध अपनी विशेष अहिंसक विधि (मुर्गे की गर्दन को पानी में डुबोकर उसे मारना) से मुर्गा खाने की पद्धति को छोड़ने के लिए तैयार हैं? उत्तर स्पष्ट है,—'नहीं।' बल्कि हमारे अनेक सैक्युलर नेता तो खुले रूप से कहते हैं (गान्धीजी भी ऐसा ही कहते थे) कि गाय की बलि मुसलमानों का धार्मिक अधिकार है। तो मैं पूछता हूँ कि यह कैसे कहा जा सकता है कि ये सब मत अहिंसा सिखाते हैं? मुसलमान तो 'इस्लाम' छोड़ देने वाले मुसलमान को संगेसार (पत्थरों से मार डालना) की विधि से मार देने का समर्थन करते हैं जबकि दूसरे मत वालों को अपना मत छोड़कर इस्लाम ग्रहण करने का निमन्त्रण देना अपना धार्मिक कर्तव्य एवं अधिकार मानते हैं।

यदि कहो कि ये बातें तो बाद की हैं, कुरान यह बात नहीं सिखाता, तो क्या आज हमारे नेता मुसलमानों से आज किसी भी प्रकार इन बातों को छुड़वाने का साहस रखते हैं? उन्हें प्रेरणा देने को तैयार हैं? यदि नहीं, तो क्या साम्प्रदायिक सद्भाव बनाने की बातें करना, अपीलें करना और आशा रखना आत्म-प्रवंचना नहीं है? जो लोग खुले आम झूठ बोल कर, धोका देकर, भय दिखला कर या लोभ लालच से अपने सम्प्रदाय की संख्या बढ़ाने का प्रचार करते हैं, क्या सरकार उन्हें सख्ती से या प्रेम से कुचलने, उनकी निन्दा करने के लिए उद्यत है? उत्तर है—'नहीं'। तो फिर क्या इन ऊपर के थोथे, दिखावटी नारे लगाने से वास्तविक सद्भावना हो सकेगी? कदापि नहीं।

महर्षि दयानन्द की स्पष्ट मान्यता है कि जब तक भूमण्डल में या देश में विना किसी जन्म, रंग, लिङ्ग जाति या सम्प्रदाय के भेद के मानव-मात्र को उन्नति करने, अपने विचारों को स्वतन्त्रता पूर्वक निर्भय होकर व्यक्त करने और तदनुसार ही आचरण करने की स्वतन्त्रता एवं समान अधिकार प्राप्त नहीं होंगे, तब तक शान्ति एवं सद्भाव की स्थापना नहीं हो सकती। इसके लिए आवश्यक है कि सब मतवादी समान मानव-धर्म को अपनी इच्छा से स्वीकार कर लेवें या स्वयं ऐसा न करने की अवस्था में राजकीय एवं सामाजिक नियम द्वारा उसे स्वीकार करने के लिए उन्हें बाध्य कर दिया जावे। इस मानव-धर्म का विरोध करने की किसी को अनुमति न हो। इस आधार पर हर व्यक्ति को 'सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना पड़ेगा और प्रत्येक हितकारी (Personal) नियम में सब स्वतन्त्र रहेंगे।' (आर्य समाज का १० वाँ नियम।) हर व्यक्ति को अधिकार होगा कि वह सब धर्मग्रन्थों की बातों को अपनी बुद्धि के अनुसार तर्क की कसौटी पर कसे, जितनी बात उसे ठीक लगती है, उतनी माने और शेष न माने तथा तदनुसार ही निर्भय होकर अपने विचार प्रकट करे पर किसी दूसरे पर अपने विचार बलात् न लादे। इसी बात को महर्षि दयानन्द ने चौदहवें समुल्लास की अनुभूमिका में लिखा है, "और सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर फिर भी जिसकी इच्छा हो वह न माने। किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता।" साम्प्रदायिक सद्भाव के नाम पर सब प्रकार के अन्धविश्वासों को मान्यता देना मनुष्य को मनुष्यत्व से गिरा कर उसे पशु बनाना है। यह प्रवृत्ति अवैज्ञानिक है। हर व्यक्ति के इस अधिकार को हमें स्वीकार करना होगा कि उसे जिस समय जो सम्प्रदाय ठीक लगे, वह उसे स्वीकार करे और जब उसे उसमें किसी प्रकार का दोष दृष्टि गोचर हो, तो उसे छोड़ दे। यह नियम सर्वभौम होना चाहिए। जो सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय वालों को अपना प्रचार करने

और अपने सम्प्रदाय वालों को विश्वास न रहने की अवस्था में उसे छोड़ देने का अधिकार देना स्वीकार नहीं करता, उसे अपने साम्प्रदाय के प्रचार का भी कोई अधिकार न रहना चाहिए। अपना हो या पराया; अल्पमत हो या बहुमत; कुर्आन और बाइबिल हो या वेद और पुराण; भारत हो या पाकिस्तान; स्पेन, पुर्तगाल और जापान हो या चीन और रूस; काला हो या गोरा—सबके लिए एक ही आचार-संहिता है और वह है यह, कि तुम जो अधिकार स्वयं चाहते हो, वह दूसरों को भी दो। जो तुम दूसरों को नहीं देना चाहते, वह तुम्हें भी नहीं मिलेगा।

साम्प्रदायिकता की जड़ कहाँ ?

गत दिनों अहमदाबाद में (और अब कलकत्ता में भी) हुए साम्प्रदायिक उपद्रवों ने समस्त भारत राष्ट्र को एक बार पुनः उद्विग्न करके रख दिया है और साम्प्रदायिक एकता एवं सद्भाव की चर्चा सर्वत्र सुनाई पड़ने लगी है। इस एकता के लिए दिए जा रहे भिन्न-भिन्न सुझावों में काँग्रेस की विवेकहीन अतः चिरकुमारी ५० वर्षीया वृद्धा नीति का अनुसरण करते हुए ही सैक्यूलरिज्म की भेड़ की खाल में साम्प्रदायिकता के भयङ्कर भेड़िये रूपी कुछ घोर साम्प्रदायिक दलों के नेता पुनः रटलगाने लगे हैं कि अल्पसंख्यकों की सुरक्षा हर मूल्य पर की जानी चाहिए और उनके विरुद्ध किसी प्रकार की बात कहने की अनुमति न दी जानी चाहिए। श्री चह्वाण के अनुसार अल्पसंख्यकों के आश्वासन के लिए सेना और पुलिस में अल्पसंख्यकों की अधिक भर्ती की जानी चाहिए। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि इस देश में जीने का अधिकार केवल अल्पसंख्यकों को है, बहुसंख्यकों को नहीं। निष्पक्ष दृष्टि से विचार किया जाय तो पता लगेगा कि सारे साम्प्रदायिक उपद्रवों की जड़ यह साम्प्रदायिक दृष्टिकोण है जो वास्तव में सैक्यूलरिज्म का सबसे बड़ा शत्रु है। क्या कोई भी समझदार, ईमानदार, और घटनाओं का जानकर व्यक्ति इस तथ्य से इन्कार कर सकता है कि कई साम्प्रदायिक उपद्रवों का कारण केवल कुछ अल्पसंख्यकों द्वारा पाकिस्तान समर्थक जयघोष अथवा पाकिस्तान विरोधी कुछ जयघोषों का विरोध और शेख अब्दुल्ला जैसे भारतके शत्रुओं का पक्ष पोषण ही रहे हैं। तब प्रत्येक स्थिति में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का ढिंढोरा पीटना क्या साम्प्रदायिकता की चरम सीमा नहीं है? जबकि हमारा वास्तविक लक्ष्य हर देशभक्त और निपराध व्यक्ति की सुरक्षा और उसके विरुद्ध किए जा रहे अनर्गल प्रचार को रोकना और हर दोषी और देश द्रोही व्यक्ति को कड़ा दण्ड देना

चाहिए, फिर वह व्यक्ति चाहे किसी भी अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक सम्प्रदाय से सम्बन्ध क्यों न रखता हो।

कठिनाई यह है कि इस विषय में सर्वसाधारण तक में प्रचलित इस सामान्य सी उक्ति को भी दृष्टि ओझलकर दिया गया है कि मारता भी जाए और रोता भी जाए या पहले छेड़े भी और फिर बदले में मार पड़ने पर रोने भी लगे। क्या किसी वर्ग का अल्पसंख्यक होना ही उसके निर्दोष होने का प्रमाण हो सकता है? क्या बहुसंख्यकों से भरे नए बाजार में उनके ही नेता श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की हत्या एक अल्पसंख्यक ने नहीं की थी? क्या पं० लेखराम और महाशय राजपाल की हत्या इन अल्पसंख्यकों ने नहीं की थी? हमें बताया जाय कि इन अल्पसंख्यकों के कितने नेताओं ने इन हत्यारों की निन्दा की थी? क्या गाँधी जी के परम भक्त, काँग्रेस के प्रधान मौ० मुहम्मद अली ने हत्यारे अब्दुल रशीद के पक्ष में न्यायालय में गवाही न दी थी? क्या इन अल्पसंख्यकों ने उसे गाजी की उपाधि नहीं दी थी? फिर बताया जाय कि क्या इस तथा कथित हिन्दु बहुमत से सम्बन्ध रखने वाले इन आर्य समाजियों ने किसी एक भी मुसलमान मौलवी अथवा किसी नेता की हत्या की? क्या कभी इस्लाम की तबलीग को बलपूर्वक रोकने का प्रयास या माँग की, जबकि मुसलमानों ने आर्यसमाजियों की शुद्धि को बलपूर्वक रोकने के अनेक प्रयास किए और कितने हिन्दुओं को बलात् मुसलान बनाया? इन तथ्यों की उपस्थिति में केवल अल्पमत की सुरक्षा की रट लगाना क्या अल्पसंख्यक-साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देना और बहुसंख्यक सम्प्रदाय से अन्याय करना नहीं है?

फिर इस अल्पमत की सुरक्षा की ही बात को मान लिया जाय तो ये लीडर बतलाएँ कि काश्मीर के हिन्दु अल्पमत की रक्षा के लिए इन्होंने क्या किया? पाकिस्तान में हिन्दु अल्पमत पर ढाए गए अत्याचारों की भारत के कितने मुस्लिम नेताओं ने खुलकर निन्दा की? पंजाब के ४५%हिन्दु अल्पमत की भाषा हिन्दी और उनके धर्म तथा संस्कृति की रक्षा के लिए इन्होंने क्या पग उठाए? जिस प्रकार हिन्दु बहुमत वाले प्रदेशों में मुस्लिम और ईसाइयों को अपने मत का हिन्दुओं में प्रचार करने की छूट तथा सुविधा है, क्या काश्मीर और नागालैण्ड जैसे प्रदेशों में हिन्दुओं को मुस्लिमों तथा ईसाइयों में हिन्दु धर्म का प्रचार करने की वैसी ही छूट तथा सुविधा है? पिछले दिनों श्री बख्शी गुलाम मुहम्मद ने देहरादून में स्पष्ट कहा था कि काश्मीर में धारा ३७० वहाँ के बहुमत को अल्पमत में न बदलने की गारण्टी है जो रहनी चाहिए। तो क्या ऐसी गारण्टी आसाम, नागालैण्ड और केरल के हिन्दु बहुमत को भी है कि जिससे वह अल्पमत में न बदलने पाए, जबकि वहाँ

अल्पमतों की संख्या में कहीं-कहीं आठ सौ प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है ? उत्तर स्पष्ट है—नहीं, नहीं और नहीं ।

इसका अर्थ यह है कि यह अल्पमत की रक्षा की रट केवल हिन्दुओं को हानि पहुँचाने का एक षड्यन्त्र है । अल्पमत का अर्थ है 'मुस्लिम' और 'ईसाई' अतः उन्हीं की रक्षा हो और हिन्दु बहुमत नष्ट हो—यह इस नीति का उद्देश्य है।

पिछले दिनों अलीगढ़ विश्वविद्यालय के चांसलर श्री अलीम ने एक गोष्ठी में श्रीमती लक्ष्मी पण्डित की उपस्थिति में कहा था कि अल्पमत को कहीं से भी सुरक्षा की गारण्टी की आशा नहीं है, इसके लिए उन्हें, स्वयं लड़ना पड़ेगा। उसी गोष्ठी में केन्द्रीय विधि उपमन्त्री श्री यूनुस सलीम ने स्पष्ट ही धर्मनिरपेक्षता की धज्जियाँ उड़ाते हुए इसे मुसलमानों के लिए घातक बताया था और कहा था कि मैं मुसलमानों के (Personal law) में कोई हस्तक्षेप नहीं होने दूंगा । अभी अहमदाबाद में उन्होंने जो कुछ किया है, वह सर्वविदित है ही । शाहनवाज खाँ जैसे मुस्लिम नेता ने मन्त्री पद छोड़ते ही मेरठ में शेख अब्दुल्ला को बुलाया और दङ्गे हो जाने पर समाचार-पत्रों में सम्पादक के नाम पत्र लिखकर अपने इस कृत्य को सर्वथा उचित बतलाया । क्या शेख अब्दुल्ला को महत्व प्रदान करना राष्ट्रभक्ति है ? श्री हुमायूँ कबीर ने मन्त्री-पद छोड़ते ही उस्मानियां विश्वविद्यालय में मुसलमानों के पृथक् प्रतिनिधित्व की जोरदार वकालत की । क्या यह सैक्युलिरिज्म है ? जिस प्रकार हिन्दु-बहुल प्रदेशों में कोई हिन्दु-मुसलमान बन सकता है ? कलकत्ता के एक अभियोग में एक मौलवी ने अकेले ही १०५०० हिन्दु स्त्रियों के निकाह पढ़ाने का दावा किया था) क्या उसी प्रकार किसी मुस्लिम बहुल प्रदेश या देश में मुसलमानों का हिन्दु बन जाना यह भारत का तथाकथित उपेक्षित एवं पीड़ित अल्पमत सहन कर सकता है ? यही बात ईसाइयों के सम्बन्ध में भी है । जो पोप अथवा पादरी भारत के सैक्युलरिज्म की दिनरात प्रशंसा करते हैं, क्या वे स्वयं भी वैटिकेन नगर अथवा स्पेन, पुर्तगाल आदि ईसाई बहुल देशों में सैक्युलरिज्म की स्थापना करने के पक्ष में है या आर्य-समाज जैसी संस्थाओं को धर्मप्रचार की छूट देने के लिए उद्यत हैं ? जबकि आर्य समाज ने कभी किसी भी देश में जाकर ईसाई पादरियों की तरह वहाँ की राष्ट्रीयता के विरुद्ध प्रचार नहीं किया ? जब सिन्ध में मुस्लिम लीगी सरकार ने सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाया तो इसके विरुद्ध भाई परमानन्द के प्रस्ताव पर काँग्रेसी सदस्य तटस्थ हो गए पर आर्य समाज ने कभी भी कुरान पर या इस्लाम के प्रचार पर प्रतिबन्ध लगाने की माँग नहीं की । क्या

क्या हमारी सरकार सयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अथवा स्वतन्त्र रूप से सभी देशों में सैक्युलरिज्म लाने के लिए कोई प्रयास करती है ? अथवा यह सैक्यूलरिज्म केवल भारत के लिए अमृत तथा अन्य सब देशों के लिए विष है ? आज साम्प्रदायिक उपद्रवों से पीड़ित भारत इन अल्पमत की रक्षा का शोर मचाने वाले लीडरों से इन सभी प्रश्नों के उत्तर माँगता है।

क्या ये उत्तर देने का साहस एवं ईमानदारी दिखाएँगे ? ००

नवजवान देश के !

नवजवान देश के, चलो जननि पुकारती ।
सपूत मातृ-भूमि के, है मातृ-भू कराहती ॥
बढ़ रहा है दल असुर, बढ़ रहे कुधर्म तत्व,
नष्ट हो रहा सुधर्म, नष्ट हो रहा सुतत्व,
बढ़ रहे, बिखर रहे, आज आसुरी कुतत्व,
वेद भानु अस्त व्यस्त, अस्त है शुचिर ममत्व,
वेद ध्वज लिए बढ़ो, समस्त-भू पुकारती ।
सपूत मातृ-भूमि के, है मातृ भू-कराहती ॥
राम-कृष्ण अंश हे, बढ़े चलो, बढ़े चलो,
शिवि-दधीचि वंश हे, बढ़े चलो, बढ़े चलो,
व्याप्त दिव्य भूमि पर, नृशंस मेटते चलो,
लक्ष्य है अतीव दूर, शक्ति से बढ़े चलो,
क्लान्त-श्रान्त राष्ट्र-आत्म, हैं तुम्हें पुकारती ।
सपूत मातृ-भूमि के, है मातृ भू-कराहती ॥
धनुर्बाण हाथ ले, बढ़ो तुम कर्ण-पार्थ हे !
असत्य तुम हटो स्वतः, हटो महान् स्वार्थ हे !
बढ़े सुपन्थ पर चलो, विनष्ट कर कुपन्थ जो,
बिखेरते प्रभा चलो, दीप्त है ज्वलन्त जो,
दयार्द्र आप्त जनमनों को, आज है पुकारती ।
सपूत मातृ-भूमि के, है मातृ भू-कराहती ॥

—राधे श्याम

क्या आपका कोई मित्र है ?

या

आप का कोई सम्बन्धी है……

तो क्या

आप यह नहीं चाहते कि—

"जन-ज्ञान" का सन्देश

उन तक भी पहुँचे ?

फिर क्यों नहीं आज ही उन्हें भी

सदस्य बना कर धर्म लाभ उठाते ?

हमारी इच्छा है कि 'जन-ज्ञान'

अब १0 हजार छपे

यह इच्छा एक दिन में पूरी हो सकती है यदि

आप केवल एक नया सदस्य

बना कर भेज दें।

१० हजार 'जन-ज्ञान' शीघ्र से शीघ्र

छपना ही चाहिए।

विनीत

भारतेन्द्रनाथ

कहानी

राधेश्याम आर्य

पट परिवर्तन

○

"क्या अब सत्य का साक्षात्कार न हो सकेगा ? जिसके लिए मैंने घर छोड़ा, परिवार छोड़ा, विद्याध्ययन का परित्याग किया, हिमालय की गुफाओं, जंगलों तथा भयावह घाटियों की खाक छानता रहा। भूख-प्यास को तिलाञ्जलि दी।"

सुभाष के हृदयाकाश में यही अन्तर्द्वन्द्व के मेघ घनीभूत हो रहे थे कि एकाएक उनकी ट्रेन मन्द पड़ गयी। शायद कोई स्टेशन था। क्षणोपरान्त स्टेशन भवन सम्मुख था। ट्रेन रुक गयी। भवन के मध्य भाग में लिखा था 'गया जंक्शन'।

'गया' शब्द पढ़ते ही सुभाष का हृदय उद्वेलित हो उठा। "अहा ! वही गया ! जहां पर युग पुरुष महात्मा बुद्ध को सत्य की प्राप्ति हुई थी। जिस गया की महिमा हमें मथुरा और वृन्दावन में, हिमालय की कन्दराओं में निवास करने वाले साधुओं से सुनने को मिली थी। अवश्य ही 'गया' एक पुण्यस्थली है। हो सकता है हमें भी यहां पर सत्य की प्राप्ति हो।"

अन्यमनस्क-सा सुभाष ट्रेन से उत्तर पड़ा, यद्यपि उसका टिकट कलकत्ता के लिए था।

स्टेशन से बाहर आते ही उसकी भेंट दयाल पंडित से हुई। थोड़ी देर तक दोनों व्यक्तियों में बातें हुई। तदुपरान्त सुभाष ने अपना प्रयोजन दयाल पंडित के समक्ष खोलकर रख दिया—"पंडित जी, शायद आप हमें हँसें, लेकिन कह ही दे रहा हूँ। विगत कई महीनों से सत्य की खोज करता रहा, पर न मिला सत्य और न मिला सत्पथ। कितने ही धार्मिक स्थानों पर, तीर्थों, नदी तटों पर गया, लेकिन सत्य का कुछ भी आभास न हुआ।"

बाबू जी ! आपको बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी, इसका हमें दुःख है। अब आप निराश न हों, अवश्य ही आप सत्य प्राप्त करेंगे। मैं जिस आश्रम में रहता हूँ, वह यहां का सबसे बड़ा आश्रम माना जाता है। हम आपको वहीं ले चलते हैं।"

सुभाष का हृदय गद्गद् हो उठा। वह पंडित जी को धन्यवाद देते हुए बोला —"पंडितजी ! आपका उपकार कभी नहीं भूलूँगा।" "इसमें उपकार की क्या बात है ? बाबू जी।"

सुभाष का मानस-सागर विभिन्न भावनाओं से तरंगित था। उसके हृदय में एक नयेपन का संचरण हो रहा था। चेहरा प्रफुल्लित था। थोड़ी ही देर के पश्चात वह आश्रम आ गया, जिसमें सुभाष के सत्य की अवधारणा थी। आश्रम भवन को देखते ही सुभाष की आँखें चकाचौंध हो गई। ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ थीं।

गगन-चुम्बी मीनारें थीं। आश्रम का तोरण बन्दनवार तथा रंग-बिरंगी पताकाओं से सुशोभित हो रहा था। आश्रम में एक चेतनामय चहल-पहल दिखाई दे रही थी। सुभाष ने पंडितजी के साथ आश्रम में प्रवेश किया। सामने एक कुआं था, जिसकी बनावट मनमोहक थी। अब आश्रम का विशाल भवन उसके सम्मुख था। भवन की कलात्मकता एवम् पच्चीकारी ने उसे स्तम्भित कर दिया। सामने एक गोशाला बनी थी। जहां सैंकड़ों गाएं रहती थीं। उसी की बगल में नौकरों का निवास-स्थान था। गुम्बजों से ढका हुआ वह आश्रम इन्द्रपुरी को भी मात दे रहा था, जिस पर जगमगाते रंगों की पुताई हुई थी। वह आश्रम भवन, राज भवन से भी अधिक शानदार लग रहा था। सुभाष के मन में कुछ शंका पैदा हुई लेकिन वह शांत भाव से पंडितजी के साथ आगे बढ़ता गया। वे उस स्थान की ओर बढ़े जहां आश्रमाध्यक्ष महन्त जी स्वर्णासन पर बैठे हुए थे। बीसियों शिष्य सब उनकी सेवा सुश्रुषा में लगे थे। महन्तजी के शरीर से ऐश्वर्य की आभा फूट रही थी। वहीं पर दूसरी ओर राम धुन लगी हुई थी। कीर्तन हो रहा था। महन्तजी भी बीच-बीच में उपदेशों की झड़ी लगा देते थे। एक अजीब सी रौनक थी। एक ओर महिलाओं द्वारा भी वाद्य-विद्या के साथ भजन गाया जा रहा था। सुभाष समस्त दृश्य देखकर स्तम्भित हो उठा। उसने महन्त जी के चरण छुए और आशीर्वाद पाकर सामने बैठ गया। महन्तजी से उसने अपना उद्देश्य तथा अपनी यात्रा के विषय में बताया। महन्तजी बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने कहा—

"बेटा ! तुम्हारा उद्देश्य महान् है, अवश्य ही तुम उसे यहां प्राप्त करने में सफलता प्राप्त करोगे।"

महन्तजा ने सुभाष को लाने वाले पंडित जी को बुलाया और कहा— "पंडित जी ! बच्चा के लिए भोजन का उचित प्रबन्ध करके अमुक कमरे में ले जाकर ठहरा दो। मैं आज रात इन्हें सत्य का ज्ञान कराऊंगा।"

"जैसी आज्ञा महाराज।"

पंडितजी ने कहा।

कृतज्ञ नेत्रों से महन्तजी को देखते हुए सुभाष पंडित जी के साथ चल पड़ा, उस कमरे के लिए जिसमें उसे रुकना था। सुभाष ने भोजन किया और महान् लक्ष्य की प्राप्ति की प्रतीक्षा करते हुए विश्राम करने लगे।

(२)

सुभाष कलकत्ता के फोर्ट-विलियम कॉलेज में कक्षा ग्यारह में पढ़ रहा था। अगस्त का महीना था, पढ़ाई आरम्भ ही हुई थी। कलकत्ते में स्वामी विवेकानन्दजी का भाषण होने वाला था। सुभाष भी भाषण सुनने के लिए पहुँचा। लाखों व्यक्ति एकत्र थे। समस्त जन समुदाय शांत मन से स्वामीजी के उपदेशों को सुन रहा था। पीछे, बिल्कुल पीछे सुभाष भी खड़ा-खड़ा बड़े ही शांत भाव से स्वामीजी के उपदेशों में निमग्न हो रहा था। भाषण समाप्त हुआ। अन्त में उन्होंने कहा—"सत्य की खोज करो।" स्वामीजी के उपदेशों ने सुभाष के हृदय में घर कर लिया था। परिणामस्वरूप यह वाक्य उसके हृदय में घुसा और उसने तत्क्षण सत्य की खोज करने की प्रतिज्ञा कर ली। प्रतिज्ञा महत् थी। सत्य की खोज करना कोई आसान काम नहीं। बड़े-बड़े ऋषि मुनि भी जिस सत्य को नहीं प्राप्त कर पाते हैं, उसे पाने के लिए सुभाष का मन अधीर हो उठा। समक्ष गहन समस्या थी। सत्य कहाँ मिलेगा? क्या हिमालय की गुफाओं में मिलेगा? अवश्य वहीं मिलेगा? क्योंकि आदि काल से ही गिरिराज ऋषि मुनियों का आकर्षण केन्द्र रहा है। इसकी सुरम्य वनस्थलियों में अवश्य ही सत्य मिलेगा। लेकिन वहां कैसे जाया जाय? क्या विद्याध्ययन छोड़ दिया जाय? क्या परिवार वाले अनुमति देंगे, जाने के लिए? वहां कैसे और कहां निवास किया जायगा? अन्यान्य समस्याएं सुभाष के अन्तःकरण को उद्वेलित करने लगीं। लेकिन जिस व्यक्ति के मानस सागर में साहस तथा निर्भीकता का अथाह सागर हिलोरें ले रहा हो वह क्यों कर इन समस्याओं से डरेगा? सुभाष ने सत्य की खोज करने के लिए हिमालय जाने का निश्चय कर ही लिया। एक दिन परिवार, विद्याध्ययन, माया मोहादि समस्त सांसारिक वस्तुओं का परित्याग कर वह चल पड़ा, पर्वतराज हिमालय की सुरम्य तलहटियों में शांति और सत्य प्राप्त करने के लिए। हमारी मातृ भूमि की दिव्य धरा पर ऐसे महापुरुषों का यह साहसिक कार्य कोई नया नहीं था। महाराज भगीरथ, महात्मा बुद्ध, महर्षि विश्वामित्र, महर्षि दयानन्द सरस्वती प्रभृति महान आत्माओं ने भी यह साहस दिखाया है जिन्होंने सत्य की प्रभा बिखेर कर सारे संसार को आलोकित किया है। लेकिन विधि का विधान कुछ दूसरा ही था। जिस महान् आत्मा का अवतरण भारत माता की

दासता शृंखलाओं को टुकड़े-टुकड़े करने के लिए हुआ था, जिस वीर आत्मा का अवतरण एक जर्जर राष्ट्र में वीरत्व जाग्रत करने के लिए हुआ था, जिसका जन्म भारतीय शौर्य की गौरवान्वित गरिमा का प्रदर्शन करने के लिए हुआ था, जिसका अवतार हाथों में तलवार सम्भाल कर अत्याचारों, अन्यायों, जुल्मोसितम तथा दुश्मनों का संहार करने के लिए हुआ था। वह शांति और सत्य प्राप्त कर एक संन्यासी और महात्मा कैसे बन सकता था ? उसे तो भारत माता की सदियों की दासता से मुक्त कराने के लिए खड्ग धारण करना था, नवयुवकों में उत्साह भरना था।

सुभाष हिमालय की गुफाओं में भटकता रहा। लेकिन उसे सत्य का आभास न हुआ। वह आश्रमों में गया, एकान्तवास किया, मन्दिरों में गया, भयावह घाटियों में विचरण किया, बड़े-बड़े ऋषियों मुनियों के दर्शन किए। पर सब व्यर्थ, निष्फल। अन्त में निराश होकर मथुरा-वृन्दाबन के लिए रवाना हुआ। विभिन्न धार्मिक स्थलों पर सत्य की खोज करते हुए भगवान कृष्ण की जन्मभूमि ब्रज आ पहुँचा। यहां पर भी कई दिनों तक सभी मन्दिरों, आश्रमों में भटकता रहा, लेकिन सत्य न मिला।

अन्त में निराश होकर उसने कलकत्ता वापस जाने का निश्चय किया।

(३)

अर्द्ध रात्रि का समय था। ठीक १२ बजे थे। वातावरण निस्तब्ध था। पण्डितजी ने सुभाष के कमरे में प्रवेश किया।

"अब आप चलें। महाराज ने आपको बुलाया है।"

"धन्यवाद" संक्षिप्त सा उत्तर देते हुए सुभाष पंडितजी के साथ चल पड़ा। कमरे में प्रवेश करते ही उसकी चमचमाहट ने सुभाष को हैरान कर दिया था। महन्तजी को देखते ही सुभाष के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने देखा कि महन्तजी एक स्वर्णासन पर बैठे हैं। उनके सामने लगभग १० शराब की बोतलें रखी हैं। कुछ शिष्यगण आस पास बैठे हैं। कुछ वेश्याएं थीं। सुभाष का हृदय यह दृश्य देखते ही चीत्कार कर उठा। महन्त जी ने एक रजतासन की तरफ संकेत करते हुए सुभाष से बैठने को कहा। सुभाष बैठ गया। महन्तजी ने एक बोतल उठाई और निगल गए। महन्तजी ने एक बोतल सुभाष की तरफ भी बढ़ाई। फिर क्या था ? वह निर्भीक बालक उठकर खड़ा हो गया—

"यह क्या ? क्या यही आपका सत्य है ?" "नहीं, नहीं, बेटा, बैठो तो।" महन्त जी ने कहा।

सुभाष अपने को रोक न सका। उसने कहा—"महन्त जी ! आप लोग

महात्मा नहीं, व्यभिचारी हैं। भारत माता की पावन भूमि के कलंक हैं। एक तरफ तो देश दासता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है, गरीब जनता भूखों मर रही है और दूसरी तरफ आपका यह ऐश और व्यभिचार।"

सुभाष का शरीर कांप रहा था। भुजाएँ फड़क रही थीं। सुभाष बाहर निकलने को तत्पर हुआ ही था कि महन्त ने कड़ी आवाज़ लगाई और शिष्यों से पकड़ने को कहा। सुभाष ने भी सिंह सदृश गर्जन किया—"रुको! रुको! भारत की गरीब जनता की गाढ़ी कमाई के लुटेरो। रुक जाओ। इतना बड़ा व्यभिचार। धार्मिकता की चादर ओढ़ कर राष्ट्र पर कलंक का टीका लगाने वाले राहु! अज्ञानी जनता को झूठी महिमा बताकर ठगने वाले ठगो, राम नाम का पीताम्बर ओढ़े हुए—दानव! देश द्रोही!"

सम्पूर्ण आश्रम मूक सा हो गया। सभी शिष्य शांत। किसी का साहस सुभाष को पकड़ने का न हुआ। वह बाहर आया। उसके हृदय में एक क्रान्तिकारी भावना उद्दीप्त हो गई थी। सीधे स्टेशन पहुँचा और कलकत्ते के लिए रवाना हो गया।

⁂

[शेष पृष्ठ ५१ का]

(८) गैसों में कार्बन डाई-आक्साइड, आक्सीजन, तथा नाइट्रोजन पाया जाता है।
(९) प्रोटीन रहित अनेक नाइट्रोजन वाले पदार्थ पाये जाते हैं।
(१०) अनेक फास्फोरस वाले पदार्थ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गो-दुग्ध में अनेक ऐसे गुणकारी तत्व हैं जिनके होने से गाय का दूध अकेला ही हमको आरोग्य और स्वस्थ बनाने में सक्षम है अतः प्रत्येक व्यक्ति को यथासम्भव गाय के दूध का सेवन करना चाहिये और चाय तथा वनस्पति तेल जैसे विकारी पदार्थों के बदले गोदुग्ध एवं घी का ही प्रयोग करना चाहिये। ००

जब तक भारत में गो-हत्या होती रहेगी
देश उभर न सकेगा।

—"सरस्वती पुत्र"

सत्यार्थ-प्रकाश और गांधी

● ● ●

वीर सावरकर ने कहा था—"महर्षि जी का लिखा अमर ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" हिन्दू-जाति की रगों में ऊष्ण रक्त का संचार करने वाला है। "सत्यार्थ प्रकाश" की विद्यमानता में कोई विधर्मी अपने मजहव की शेखी नहीं मार सकता।"

महात्मा हंसराज ने कहा था—"यह पुस्तक आर्य समाज का—"सुदर्शन चक्र है जिसके प्रहारों के आगे मतवादियों का ठहरना बड़ा ही कठिन है।"

किसी ने चौदह वार वाला पिस्तौल कहा तो किसी ने कुछ। विपक्षियों ने भी मुक्त कण्ठ से इसकी प्रशंसा की। उसे पढ़कर अनेकों ने अपने जीवन की आहूतियां आर्यसमाज को वनाये "यज्ञ-कुण्ड" में डालकर देश और समाज की जो सेवा की है उसका सानी नहीं। परन्तु आइये एक वार गाँधीजी द्वारा प्रकट किये गये सत्यार्थ प्रकाश के विषय में विचार पढ़िये—

"मेरे हृदय में स्वामी दयानन्द के विषय में बड़ा मान है। मैं समझता हूँ कि उन्होंने हिन्दू-धर्म की बहुत सेवा की है। उनकी वीरता में सन्देह करने की गुन्जाइश नहीं, परन्तु उन्होंने धर्म को संकुचित बना दिया है। मैंने आर्य समाजियों की वाइबिल "सत्यार्थ प्रकाश" को पढ़ा है।······मैंने इतने बड़े सुधारक का ऐसा निराशाजनक ग्रंथ आज तक नहीं पढ़ा—। स्वामी दयानन्द ने सत्य और केवल सत्य पर खड़े होने का दावा किया है परन्तु उन्होंने अनजान में जैन धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाइयत और स्वय हिन्दू धर्म को अशुद्ध रूप में उपस्थित किया है। उन्होंने पृथ्वी-तल पर अत्यन्त सहिष्णु और स्वतन्त्र सम्प्रदायों में से एक (हिन्दू सम्प्रदाय) को संकुचित बनाने का प्रयास किया है। यद्यपि वे मूर्ति-पूजा के विरुद्ध थे परन्तु उन्होंने वेदों को मूर्ति बना दिया है और वेदों में विज्ञान प्रतिपादित प्रत्येक विद्या का होना प्रमाणित किया है। मेरी सम्मति में, आर्य समाज "सत्यार्थ प्रकाश" की उत्तमताओं से उन्नत नहीं हो

रहा है, अपितु उसकी उन्नति का कारण उसके संस्थापक का विशुद्ध चरित्र है। आप जहाँ कहीं भी आर्य समाजियों को पायेंगे, वहाँ जीवन और जागृति मिलेगी, परन्तु संकुचित विचार और लड़ाई झगड़े की आदत से वे अन्य सम्प्रदाय वालों से लड़ते रहते हैं और जहाँ ऐसा नहीं वहाँ आपस में स्वयं लड़ते रहते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द को भी इसका अधिकांश भाग मिला हुआ है .....।"

सत्यार्थ प्रकाश के प्रकाशन के पश्चात् भी मुसलमानों में कोई विशेष उत्तेजना नहीं फैली थी। परन्तु गाँधीजी द्वारा लिखित "यंग इण्डिया" के उपरोक्त लेख से मुसलमानों को बल मिला और सम्प्रदायवादी मुसलमानों ने "रंगीला रसूल" नाम का जो उपद्रव खड़ा किया था यह किसी से छिपा हुआ नहीं। पश्चात् महाशय राजपाल पर भी मुस्लिम गुण्डों के तीन घातक आक्रमण हुए जिससे उन्हें अपने प्राण त्यागने पड़े, इसी लेख की प्रतिक्रिया मात्र थी।

ई० स० १९४४ से १९४६ का काल "सत्यार्थ प्रकाश" के लिए सिंध के इलाके में अत्यन्त संघर्ष मय रहा है। इस काल में सिंध प्रान्त में "सत्यार्थ प्रकाश" पर न केवल प्रतिबन्ध लगाकर उसके प्रकाशकों पर मामले चलाने की बात उठाई गई वरन् "सत्यार्थ प्रकाश" के चौदहवें समुल्लास को जब्त करने का आदेश भी दिया गया था। इस अत्याचार के विरुद्ध आर्य समाज के शीर्षस्थ महारथियों को स्व० नारायण स्वामी जी के नेतृत्व में संगठित होकर सिंहनाद करना पड़ा। साथ ही उन्होंने कराची जाकर भारी संख्या में सत्यार्थ प्रकाश भी वितरित किये थे।

जब सत्यार्थ प्रकाश सिंधमें अपने जीवन मरण के प्रश्न पर लड़ रहा था कुछ आर्य समाजियों ने गाँधीजी का ध्यान इस ओर आकर्षित किया तब गाँधी जी ने कहा था कि "सिंध सरकार ने अच्छा नहीं किया किन्तु मैं आर्य समाजी भाइयों से आग्रह करता हूँ कि वे पुस्तक के चौदहवें समुल्लास में संशोधन करदें।"

खण्डन क्यों ?

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ, उपन्यासकार एवं आर्य विद्वान वैद्य गुरुदत्त जी ने अपने प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास पत्रलता में एक जगह लिखा है—

कठिनाई यह है कि आप सदैव ही व्यक्ति को दृष्टि में रखते हैं। समाज का अस्तित्व आपकी दृष्टि में है ही नहीं। इसी कारण आपकी और हमारी विचारधारा भिन्न-भिन्न दिशाओं में जाती है। किसी मृत व्यक्ति के कार्यों का ज्ञान इस कारण नहीं होता कि उससे उस व्यक्ति को लाभ अथवा हानि पहुँचा सकती है। इसमें लाभ यह होता है कि समाज के सामूहिक आचार-

विचार पर उस गुण दोषान्वेषण का प्रभाव पड़ता है। मानव अपनी की गई भूलों को जानकर उससे बचता है और पहले किये गये उचित कर्मों के ज्ञान से, आगे उन्नत अवस्था तक पहुंचने का यत्न करता है।"

तत्कालीन परिस्थिति—

'सत्यार्थ प्रकाश' लिखी गई उस समय ही नहीं अपितु उससे बहुत समय पहले से (और आज भी) देश में तरह-तरह के सम्प्रदाय नित्य नये पैदा होते थे (और हो रहे हैं)। वे समस्त सम्प्रदाय किसी-न-किसी रूप में राष्ट्र के चरित्र बल को प्रभावित करके निर्बल बना रहे थे, समाज में प्रचलित रीति-रिवाजों से समाज खोखला हो चुका था। मानवता शास्त्रों के पत्तों और उपदेशों तक ही सीमित रह गई थी। पृथ्वी तल पर का मानव धर्म के नाम पर भटक गया था। फलतः धर्म बदनाम हो गया था।

उद्देश्य—ऐसे समय सर्व मतमतान्तरों का विश्लेषण एवं विवेचन अत्यावश्यक था। यही काम महर्षि दयानन्द ने किया और "सत्यार्थ प्रकाश" लिखकर मानव मात्र को दीर्घ काल तक ज्योति पाने का मार्ग दिखा दिया। "सत्यार्थ प्रकाश" की पूर्वार्घ की भूमिका लिखते हुए आचार्य ने जो लिखा है वह उनके मानव प्रेम द्योतक हैं।

"मेरा इस ग्रंथ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रयोजन करना है······।······जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी और उसके विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।"

······जो जो बातें सबमें अनुकूल सब में सत्य हैं उनका ग्रहण और जो एक दूसरे के विरुद्ध हैं उनका त्यागकर परस्पर प्रीति में वर्त्तें वर्त्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे।"

आगे आचार्य लिखते हैं—

"यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथा तथ्य प्रकाश करता हूँ वैसे ही दूसरे देश के मतवालों के साथ वर्तता हूँ।······जो बलवान होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थ वश होकर परहानि मात्र करता रहता है वह जानों पशुओं का भी बड़ा भाई है।"

मानव की अवस्था और ऋषि का महत्व—

विश्व में फैले हुए समस्त सम्प्रदायों को देखकर मानव की अवस्था विलक्षण थी। सत्य के जिज्ञासु की वैसी ही अवस्था थी जैसे चौराहे पर जाकर

आगे का मार्ग पता न होने वाले पथिक की होती है। मानव इतना उच्छृंखल हो गया था कि धर्म को अफीम की पुड़िया समझ बैठा तथा "गॉड इज डेड" (ईश्वर मर गया) कहने लगा था। ऐसी चक्रवर्ती में उस नरशार्दूल ने यह निर्णय कर दिया कि धर्म एक ही है और डिण्डिम घोष के साथ कहा कि "वैदिक धर्म ही सत्य धर्म है "और आर्य समाज के तीसरे नियम में कहा कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।" इस नियम के "सत्य" को निकालने की बात ब्रह्म समाज के केशवचन्द्र सेन ने कही थी तो जिस दृढ़ता से महर्षि ने इस प्रस्ताव को ठोकर मारी यह किसी से छिपा नहीं है।

"सत्यार्थ प्रकाश" में आचार्य ने जगह-जगह पर लिखा कि सत्य का निर्णय करना ही इस पुस्तक को लिखने का मुख्य प्रयोजन है। उससे उनके हृदय में सत्य की प्रीति एवं मानवता को मरता देखकर उठ रही टीस क्या यह प्रकट नहीं करती कि वह मानव मात्र का हितैषी था और सत्यार्थ प्रकाश हिन्दुओं व आर्य समाजियों के लिए ही नहीं वरन पृथ्वी पर रहने वाले उन प्राणियों के लिए लिखी गई है जिन्हें मानव कहा जाता है। फिर सत्यार्थ प्रकाश को आर्य समाज की बाइबिल कहकर गाँधीजी ने कौन-सी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया?

ब्रह्मानन्द के आनन्द को त्यागकर उन्होंने अपने प्राणों की भी आहुति देकर वेदों का प्रकाश फैलाया, उन्होंने हिन्दू धर्म की महान् सेवा ही न की अपितु सदियों तक वेदों का प्रचारक एवं हिन्दुओं की रक्षा के लिए आर्य समाज की स्थापना की उस पर हिन्दू धर्म को संकुचित करने का आरोप कर गाँधी अपने कौन से सिद्धान्त की सार्वभौमिकता दिखाना चाहते थे यह समझ से परे है।

आरोप निराकरण—

किसी भी सम्प्रदाय को आचार्य ने बिना किसी पक्षपात एवं मानवता से नापा। ऐसा करते समय उन मतों में विद्यमान दोषों की उन्हें निन्दा करनी पड़ी तो उसमें उनका क्या दोष? वह तो उन सम्प्रदायों का दोष है बुराई साथ में लिये मानवता के उद्धार की बात करते थे। वास्तव में आचार्य—

कहीं का ईंट, कहीं का रोड़ा।
भानमती ने कुनबा जोड़ा॥"

प्रतिक्रिया की नीति के सर्वथा विपरीत थे। वेदों पर उनकी अटूट श्रद्धा थी और वह उनकी हर पुस्तक में स्पष्ट रूपेण दृष्टिगोचर होता हैं। जहाँ गाँधीजी की प्रार्थना सभाओं में रामभजन के पश्चात् गीता पाठ, गुरुग्रंथ साहब का पाठ इसके पश्चात् कुरान के आयतों की

तलावत भी होती थी। किस धर्म पर उनका कितना विश्वास था अथवा सभी पर अविश्वास ? इसका निर्णय पाठक स्वयं करें।

जिस निर्भीकता का परिचय "सत्यार्थ प्रकाश के रचयिता ने दिया है गाँधीजी उसका एक प्रतिशत भी धर्म के विषय में नहीं दे सके, अन्यथा आर्य समाजियों को चौदहवें समुल्लास के संशोधन के उपदेश के स्थान पर गाँधीजी ने मुसलमानों को कुरान में संशोधन की "नेक सलाह" दी होती। उस कुरान संशोधन की जिसमें मोमिनों की बहुबेटियों को लूटने और गैर मुसलमानों को काफिर कहने की बातें खुदा के नाम पर लिखी गई है।

इतनी निर्भीकता गाँधीजी में नहीं थी कि वे सत्य का प्रतिपादन करें तो उन्हें चुप रहना ही उचित था परन्तु मुसलमानों की चापलूसी में वे इतना खो गये कि वे क्या कर रहे थे इसका उन्हें आभास नहीं था। बाद में इस पर लीपा-पोती के प्रयत्न होते रहे परन्तु—वास्तविकता प्रकट हो चुकी थी, तीर कमान से छूट चुका था।

इस लेख को लिखने का मेरा अभिप्राय केवल "सत्यार्थ प्रकाश" संघर्षमात्र जीवन एवं उनके बारे में गाँधीजी के विचारों को प्रकट करना ही है। आर्य समाजी हर जगह दयानन्द के नाम के साथ गाँधीजी के नाम लेवल लगा दयानन्द और गाँधीजी को समान दर्जे का प्रतिपादित करते हैं। सभी से निवेदन है कि वे इस लेख को पढ़कर चिन्तन करें पश्चात् जो सत्य है उसका ग्रहण करें। हमारी दृष्टि में दयानन्द के सिद्धान्त गाँधीजी के सिद्धान्तों का खण्डन करते हैं और गांधीजी के सिद्धान्त दयानन्द के सिद्धान्तों का।

किसी को इसलिए बड़ा मान लिया कि दुनिया उसे बड़ा मानती है, सब उसकी स्तुति करते हैं और उसके आगे झुकते हैं विशुद्ध मूर्खता है। दूसरों के कहने पर फूल चढ़ाने का नाम ही अंधश्रद्धा है। हम समझते हैं कि आर्य समाजी अंधश्रद्धालु नहीं हैं। उनकी बुद्धिवादिता अब भी जीवित है। वेदों पर उनकी आस्था है। वैदिक धर्म को डंके की चोट पर गाने वाली "सत्यार्थ प्रकाश" का आर्य समाज एवं प्रत्येक आर्य समाजी अनन्य रक्षक हैं। आर्य समाजी भूले न होंगे कि वे दयानन्दजी नहीं वरन् "वैदिक धर्मी" है। वेद प्रचार उनके लिए पुनीत कर्म है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना सब आर्यों का परम धर्म है। अगर आर्यों आप यह भूल गये हो तो मुझे कहना पड़ेगा कि—

सच लूट गया सरे आम सपन बाकी है।
अब तो शबनम की जगह तपन बाकी है।।
आज आँखें भी हैरत से परेशाँ हैं।
इनसान लापता है, कफन बाकी हैं।।

★

कहानी

—रमेश

घड़े हुए पत्थर

● ● ●

कुछ वर्ष पूर्व तक मैं समझता था कि मन्दिरों आदि की मूर्तियों में 'ईश्वर' नाम की कोई अद्भुत शक्ति वाला व्यक्ति छुपा रहता है और और अपने कर्मचारियों अर्थात् पुजारियों की सहायता से समस्त जगत् को सुखी बनाने का प्रयत्न करता है। उन्हीं दिनों एक वर्ष हमारा परिवार तीर्थ यात्रा के लिये निकला और दो दिन की गाड़ी, बस और पैदल यात्रा के पश्चात् स्नानादि से निपटकर एक लम्बी सी कन्दरा को पार करते हुए हम 'देवी माता' के दरबार में जो पहुँचे। वहाँ समझ न आने वाली मूर्तियों के समक्ष मैंने एक संतोषजनक समय तक शीश नवाया और आँखें मूंदे हाथ जोड़कर बैठा याद नहीं क्या-क्या प्रार्थनाएँ करता रहा। और फिर जब लगभग आधे घण्टे बाद हम वहाँ से लौटने लगे तो पुजारी ने हमें 'खजाना' देना प्रारंभ किया। मैंने माँ से उसके विषय में पूछा तो उसने बताया कि जिसके पास जितना खज़ाना होता है वह उतना ही धनवान होता चला जाता है। इसलिये जब मुझे खजाना दिया गया तो मैंने और माँग लिया। पुजारी ने हँसकर मेरा कंधा थपथपाते हुए कुछ चाँदी के टुकड़े दे दिये और मैं अत्यधिक प्रसन्न होता हुआ सबके साथ वहाँ से बाहर आया तो देखा कि वह पुजारी भी हमारे साथ था। अन्य सदस्यों ने तो उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। लेकिन पिताजी उससे उस स्थान की स्थापना और इतिहास आदि के विषय में पूछ-ताछ करने लगे। इसलिये उनसे वार्तालाप करता हुआ वह उनके साथ हमारे कमरे में ही आ गया तो पिताजी ने दरी पर बैठते हुए कहा, 'आप अत्यन्त सौभाग्शाली है जो 'माँ' के चरणों में स्थान मिला हुआ है।' 'जी हाँ' उसने भी उनका अनुकरण करके जेब से सिगरेट निकालकर उसके एक सिरे को होंठों से गीला करते हुए कहा, 'कृपा है माँ की।'

'परन्तु आप तो बुरा काम करते हैं' अकस्मात मैं उसकी सिगरेट को

देखकर पूछ बैठा, 'क्या ऐसा करने पर आपको दण्ड नहीं मिलता ?'

'क्या मतलब' उसने जेब से माचिस निकालकर पूछा तो मैंने उसके चेहरे पर क्रोध के लक्षण देखकर पिताजी की ओर सरकते हुए कहा, 'गुरू जी कहते हैं कि सिगरेट पीना बहुत बुरी बात है। इसे तो हाथ भी नहीं लगाना चाहिये।'

'अरे बेटे' वस्तुतः स्थिति का अनुमान लगाकर उसने कुछ नम्र होते हुए कहा, 'इसके बल से तो हम बड़े-बड़े काम कर सकते हैं।'

उन दिनों, कुछ ही दिन पूर्व पढ़े हुए अपनी पाठ्यक्रम की पुस्तक के एक अध्यनानुसार में महर्षि दयानन्द को एक एक ऐस बलशाली के रूप में जानता था जिसने एक हाथ से चार घोड़ों वाली बग्घी को वहीं का वहीं बाँध कर रख लिया था। मेरे विचारानुसार वह एक महान् कार्य था और है भी। इसलिये मैंने उससे पूछ लिया, 'क्या आप चार घोड़ों वाली बग्घी को पकड़कर वहीं का वहीं खड़ा कर सकते हैं ?'

'क्यों नहीं' उसने पलभर पूर्व ही जलाई हुई सिगरेट का एक लम्बा कश लगाकर ज्योंही कुछ कहना चाहा त्योंही उसे खाँसी का दौरा सा शुरू हो गया और कुछ ही क्षण में उसकी अवस्था इतनी क्षीण हो गई कि वह छाती मलता हुआ बिना किसी नमस्कारादि के उठकर चला गया। परन्तु अभी पन्द्रह मिनट भी न व्यतीत हुए थे कि वह वापिस लौट आया और पिताजी के पास जाकर बोला, 'यजमान, आपने मेरी दक्षिणा नहीं दी ?' उस समय उसकी भाव भंगिमा देखकर मुझे लगा था जैसे कोई दीन भिखारी हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाता हुआ कह रहा है, 'भगवन, कुछ पैसे मिल जाये तो चाय का कप पी लूंगा।'

खैर, पहले तो पिता जी कुछ क्षण सोचते रहे। लेकिन फिर न जाने क्या सोचकर उसे सवा रुपया दे दिया। चूंकि उसके रंग-ढंग मुझे भिखारियों के से लगे थे इसलिए मेरी बाल-बुद्धि उससे पूछ बैठी, 'आप पुजारी हैं या भिखारी ?' परन्तु प्रत्युतर में मुझे पिताजी ने ऐसा तमाचा मारा कि संध्या तक मेरे बाएं गाल में पीड़ा होती रही और वह पुजारी वहाँ बैठा उन्हें हँस-हँस कर यह बताता रहा कि कैसे वे लोग माता के दरबार में होने वाली आय को परस्पर बाँट लेते हैं और लगभग बीस-पच्चीस हज़ार प्राणी कोई काम धंधा न करके केवल उसी पर आश्रित रहते हैं। पढ़ाई लिखाई के नाम पर उसके बच्चे उल्टे-सीधे मंत्र सीखकर और अधिक आय के साधन खोजते रहते हैं। यह सब कुछ उसने नहीं बताया। परन्तु यदि उसके शब्दों की गहराई में जाया जाय तो उनका अर्थ उपरोक्त अर्थ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं निकलता।

संध्या समय जब हम वापिस लौटने लगे तो माँ ने कहा, 'मालूम नहीं फिर कब इधर का दाना-पानी हो। जाते-जाते एक बार फिर 'माँ' के दर्शन कर आते हैं। उन्हें बहुमत प्राप्त होने में विलम्ब नहीं हुआ। उसी समय बड़े भैया ने जोकि कोई वस्तु लेने गए हुए थे, आकर समाचार दिया कि किसी भक्त टोली का काफी सारा सामान इधर-उधर हो गया है। फलस्वरूप, दरबार की ओर जाते हुए पिता जी भैया और मुझे सामान के पास बैठा कर अन्य सदस्यों के साथ चले गये। वे सब वापिस आये तो हम दोनों भाई दरबार की ओर चल पड़े। वहाँ पहले भैया ने और फिर मैंने भेंट स्वरूप दस आने चढ़ाये और माता की समझ न आने वाली मूर्ति को सर नवाकर तिलक लगवाने के लिए अपना माथा पुजारी के आगे कर दिया। तब, अकस्मात मेरी दृष्टि उसकी दृष्टि से मिली तो मुझे लगा कि वह मुझे साधारण दृष्टि से नहीं देख रहा था। मैंने सोचा सम्भवतः मुझसे कोई भूल हो गई है। इसलिए पूछ लिया, 'महाराज, मुझ से कोई भूल हो गई है क्या ?'

'नहीं' कहते-कहते उसने मेरे माथे पर चपत-सी लगा दी तो उसके हाथ पर लगा हुआ तिलक का मिश्रण छिटक कर मेरी दाहिनी आँख में जा घुसा। जैसे-तैसे मैंने आँख साफ की और वापिस लौटते हुए पुजारी से पूछा, 'महाराज अब खजाना नहीं दोगे क्या ?' प्रत्युतर में वह कुछ नहीं बोला। बस, अपने पास पड़े हुए खजाने के ढेर में से एक दो नये पैसे का गोल किनारियों वाला सिक्का उठा कर मेरी हथेली पर पटक दिया तो मैंने उस चमकीले सिक्के को देखते हुए कहा, 'और दीजिए न। इसमें चाँदी तो है ही नहीं।'

'जा-जा' इस बार उसने मुझे अपने दाहिने हाथ से निकासी द्वार की ओर धकेलते हुए कहा, 'भाग-भाग, आ जाते हैं भिखारी कहीं के। दस आने में सब कुछ लूट ले जायेगा क्या ?'

उस समय मुझे लगा था जैसे वह एक ऐसा भिखारी है जो पैसा मिलने पर तो आशीर्वादों का ढेर लगा देता है और न मिलने पर घृणित से घृणित शब्द भी बक देने से नहीं चूकता। अपने प्रति उसका विषैला व्यवहार पाकर मैं क्रुद्ध हो उठा और अपनी बुद्धिनुसार उसे खरी-खोटी सुनाने लगा और जब वह मुझ पर हाथ उठाने लगा और खड़े हुए क्षुब्ध भैया ने मुझे अपनी ओर खींच लिया और हम बाहर आ गये। परन्तु अपमान का विचार मेरी क्रोधाग्नि को तब भी प्रचण्डित कर रहा था। आज मुझे लगता है कि जितना क्रोध मुझे उस दिन आया था उतना सम्भवतः कभी इतिहास प्रसिद्ध क्रोधी पुरुष परशुराम को भी नहीं आया होगा। कुछ अधिक तो वस्तुतः मैं कर नहीं सकता था। इसलिए मन-ही-मन पुजारी को

उसके अनिष्ट का श्राप देकर रह गया।

* * * *

हम दोनों भाई वापिस परिवार के पास पहुँचे तो भैया द्वारा भीतर घटी घटना बताये जाने पर सभी को विश्वास हो गया कि अब मुझ पर देवी माता का कोप होगा। फलस्वरूप, माँ ने कहा, 'चल मेरे साथ, माँ से क्षमा माँग कर आते हैं।' परन्तु क्रोधवश मैं उनके बार-बार कहने पर भी उनके साथ नहीं गया। अतः मुझे वहीं छोड़कर वे सब मेरी ओर से क्षमा माँगने चले गये। उनके लौटने पर तैयार होकर वापिस जाने के लिए हम नीचे पहुँचे तो वहां भक्तजनों का एक और दल भी जाने के लिए तैयार खड़ा था। मैं माँ के साथ था। चलते समय जब सबने दरबार वाले भवन को दूर से विदाई नमस्कार किया तो मुझे मूर्तिवत खड़ा देखकर उसने कहा, 'बेटे माँ को प्रणाम करो।'

'कौन सी माँ को ?' मैं पूछ बैठा।

'सामने' माँ ने आँख से संकेत किया।

'मुझे तो वहाँ कुछ दिखाई नहीं दे रहा।'

'अरे गधे, सामने भवन नहीं दिखाई दे रहा क्या ?'

'दे तो रहा है' मैंने स्वीकारात्मक उत्तर देते हुए कहा, 'लेकिन वहाँ तो दीवारें ही दीवारें हैं। देवी माता तो दिखाई ही नहीं दे रही ?' पिताजी, जो हमारा वार्तालाप सुन रहे थे, बीच में ही बोल उठे, 'बेटे, कहना माना करते हैं। माँ को प्रणाम करो।' न जाने उस समय मुझे क्या सूझी, पिताजी की आज्ञानुसार सब कुछ समझते हुए भी मैंने झुक कर अपनी माँ के चरण छू लिए। 'अरे-रे रे, यह क्या कर रहा है' माँ ने मुझे बीच में ही पकड़ते हुए कहा तो मैंने उत्तर दिया, 'माँ, उन पत्थरों में तो कुछ दिखाई नहीं देता। मुझे तो तुम ही 'देवी माता' लगती हो।'

उस समय माँ ने जितने प्रेम से मुझे गले लगाया था, उससे पहले और फिर बाद में कभी भी नहीं लगाया। उस समय ऐसा लगा था जैसे स्वयं देवी माता ने ही मुझे गले लगा लिया है। उसकी मूर्ति तो अपने दरबार में मुझ पर अन्याय होतेदेख कर भी चुपचाप पड़ी रह गई थी।

पिताजी हम दोनों को निहार रहे थे। देवी माता अर्थात् माँ से अलग होने को मन नहीं कर रहा था। ऐसे में सब अपना-अपना सामान कन्धों पर लटका कर वापिसी के लिए प्रथम कदम उठाने लगे तो उस दल में खड़े किसी व्यक्ति ने जय-घोष किया, 'ऊँचे-ऊँचे पर्वतों वाली···माता तेरी सदाही जय।'

'सदा ही जय' का स्वर सामूहिक रूप से उभरा। यद्यपि मैं उस ओर आकर्षित नहीं था किन्तु फिर भी उस सामुहिक स्वर में न केवल मेरा स्वर भी मिश्रित हो गया। अपितु किसी अनजान प्रेरणा ने मुझसे अगला जय-घोष भी बुलवा दिया तो अकस्मात मुझे आभास हुआ कि सचमुच ईश्वर की कोई सत्ता तो अवश्य है। लेकिन वह किसी गढ़े हुए पत्थर या समझ न आने वाली मूर्ति और किसी के पुजारियों से भरे हुए दरबार में नहीं अपितु हृदय की उस पवित्र भावना, श्रद्धा, विश्वास और प्रेम में है जो अनजाने ही किसी के मुख से अपना जय-घोष बुलवा देती है।

* * *

बोले जहाँ ले चलेगा यह ऊँट वहाँ जायेंगे

कुठार सहिब एक शान से अपनो मूछें ऐंठे
चले जा रहे थे निशंक वे कहीं ऊँट पर बैठे
अकस्मात छुट गई ऊँट की नकेल उनके कर से
भागा ऊँट उधर ठाकुर के होश उड़ गये डर से
लगा दौड़ने ऊँट कभी तो हरी खेती में
कभी पत्थरों में कभी गर्म रेतो में
ठाकुर साहिब को तन, मन की सुध बुध तनिक नहीं थी
चश्मा कहीं, कहीं दोपट्टा सिर की पाग कहीं थी
लगे पूछने पथिक 'महाशय, आप कहाँ ! जायेंगे
बोले, जहाँ ले चलेगा यह ऊँट वहाँ' जायेंगे
जब मन असंयमी, उच्छृंल मार्ग भ्रष्ट हो जाता
बिना नकेल ऊँट सम नर को जहाँ तहाँ भटकाता

—प्रकाशचन्द्र 'कविरत्न'

—विक्रमकुमार व्याकरणाचार्य

ब्रह्म-क्षात्र शक्ति ● एक साथ जागें !

यूनान के अन्दर जिस समय सिकन्दर की माँ अपने बेटे को प्रेमपूर्ण वात्सल्य से प्यार किया करती थी तो उस समय वह सिकन्दर को कहा करती थी कि बेटा ! आज हमारा वंश नष्ट होता जा रहा है। उसकी रक्षा तुझे प्राणोत्सर्ग करके करनी है। जब ये शब्द उसके कानों में पड़ते थे तो वह पूछा करता था कि माँ मैं किस रीति से राष्ट्र को अपना सकता हूँ। तो उस समय उसकी माँ उसके मुँह पर थप्पड़ लगाकर कहा करती थी बेटे ! अपनी भुजाओं से तथा अद्वितीय मस्तिष्क से ही तुझे अपनी मान्यताओं की स्थापना करनी है।

वही सिकन्दर जब बड़ा हुआ तो उसने अपने बाहुबल से पहाड़ों को हिला दिया। समुद्र को मथ दिया। जङ्गलों को उजाड़ दिया एवं नगरों को भी विध्वंस किया। लेकिन.............नौजवानो ! आर्यावर्त्त की भुजा की चोट को वह सह न सका और प्राणत्याग करके इसको वह हाथ पसार कर छोड़ गया।

इसी प्रकार से :—

राम और विश्वामित्र के युग में............
अर्जुन और श्रीकृष्ण के युग में............
चाणक्य और चन्द्रगुप्त के युग में............
पतञ्जलि और पुष्यमित्र के युग में............

अरिदल की भुजायें कट-कट करके सड़ गईं लेकिन वे आर्यावर्त्त की भुजा का स्पर्शतक भी न कर सके।

मैं लम्बा चौड़ा इतिहास नहीं रखना चाहता। कहने का तात्पर्य यह है कि समय की छाती पर ब्रह्मशक्ति का और क्षात्र शक्ति का ही इतिहास गौरव-

से लिखा हुआ है। इतिहास साक्षी है कि केवल धर्म अथवा केवल क्षत्रियत्व कभी भी राष्ट्र में सुरक्षित न रह सके। धर्म को चलाने के लिए तलवार की और तलवार को चलाने के लिए धर्म की ज़रूरत हुआ करती है। केवल क्षत्रियत्वहीन धर्म अथवा धर्महीन क्षत्रियत्व कभी भी राष्ट्र को शान्ति प्रदान न कर सका।

पुराने ज़माने में दोनों शक्तियों ने अन्योन्याश्रय भाव से संगठन के अङ्ग रह करके चक्रवर्ती साम्राज्य को चलाया है एवं ईश्वर और वेद को धरती पर साध्य और साधन के रूप में उद्घोषित किया है। इसलिए आधुनिक युगान्तर की स्थापना करने वाले स्वामी दयानन्द ने "धर्मार्यसभा" एवं "राजार्यसभा" की स्थापना की थी और इन दोनों शक्तियों को ओजस्वी बनाने के लिए सर्वप्रथम "विद्यार्यसभा" का सन्देश सुनाया और कहा कि केवल गुरुकुल ही ऐसे तीर्थ हैं जहां से विद्या प्राप्त करके नवयुवक गण इन दोनों शक्तियों को आलोकित कर सकते हैं और देश जाति की मर्यादा को बचा सकते हैं।

आर्यों! समय आ गया है। तीनों शक्तियों को संगठित करने का। राग-द्वेष की भावनाओं को छोड़ करके, छल कपट को छोड़ करके उसके स्थान पर सहृदयता एवं सत्यता की उपासना करने का। आज धड़ाधड़ गुरुकुलों का निर्माण होना चाहिए। स्कूल कॉलेजों को गुरुकुलों में परिणित करके उसके अन्दर वेद वेदाङ्गों की पाठ विधि लगा देनी चाहिए। शराब बन्द होनी चाहिए। गोहत्या बन्द होनी चाहिए। परिवार नियोजन के स्थान पर ब्रह्मचर्य पर बल देना चाहिए।

लेकिन ये सब कब? जब तीनों सभायें साथ-साथ चलेंगी।

राज्य तभी चलेगा जब विद्या और धर्म का सम्मान होगा। विद्या और धर्म तभी जीवित रह सकेंगे जब राज्य का सम्मान होगा। राजा और प्रजा अन्योन्याश्रय भाव से हैं। तीनों सभायें राष्ट्र के तीन सम्बल हैं।

वर्तमान में आज दुरितों की पराकाष्ठा हो चुकी है। दक्षिण भारत मतदावानल से जल रहा है। उसकी चिनगारियाँ उत्तर भारत को भी घेर रही हैं। वह देखो! पावन वेद पतितों के पैरों तले कुचले जा रहे हैं। दुष्ट दानव ताण्डव नृत्य कर रहा है। "ओ३म्" की पताका कोने में पड़ी हुई सन्देश दे रही है। हिमालय की घाटियाँ हमारी मूर्खता पर मुस्करा रही हैं। इस बात पर कि हमने तीनों शक्तियों को भिन्न समझा। वह सुनो वेद भी कैसे अद्भुत घोष कर रहे हैं कि केवल "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" ही नहीं अपितु "इन्द्र वर्धन्तो अप्तुरः" और "अपघ्नन्तोऽरावणः" भी साथ चाहिए तभी "विश्वमार्यम्"

होगा। केवल गांधी की शान्ति ही नहीं शान्ति के लिए सुभाष की क्रान्ति भी चाहिए। सुदृढ़ भवन केवल ईंटों से नहीं बनता! उसके साथ गारा और सीमेन्ट की भी आवश्यकता है। केवल आकस्मिक जोश से ही राष्ट्र नहीं उठता उसके लिए श्रीकृष्ण का उपदेश भी चाहिए। सारा भूमण्डल कह रहा है संगठित हो जाओ। ब्रह्मशक्ति और क्षात्रशक्ति की इन्धन को "विद्यार्य सभा" की आग से एक साथ जलाओ। अकेली लकड़ी प्रदीप्त नहीं होती। अग्नि केवल अपने आप नहीं सुलगती। सींक को माचिस की रगड़ की जरूरत है।

जवानो! धुआँते रहने से कोई लाभ नहीं। एक बार मिल करके जलो।

अलातं तुन्दुकस्येव मुहूर्तमपि विज्वल।
क्षणं हि ज्वलितं श्रेयो नच धूमायितं चिरम्।

सभी जानते हैं कि बन्दूक की गोली धीरे-धीरे नहीं छूटती उसमें जवानी होती है।

इसलिए धुएँ के ऊपर से तो मच्छर भी उड़ जाते हैं।

लेकिन अग्नि से मदमस्त हाथी भी डरता है! ब्रह्मचारी की अग्नि से विदेशी साम्राज्य जल जाता है।

...आज ओ३म् की पताका लहराना चाहती है। वेद के मन्त्र गूंजना चाहते हैं। इसलिए जवानी और निराशा। दोनों का मेल कभी भी नहीं हो सकता। जवान हो कर के हताश होना श्रीकृष्ण ने नहीं सीखा। स्वामी दयानन्द ने नहीं सीखा। सुभाष ने नहीं सीखा। फिर क्यों......।

अब तो........बस.........रक्त का एक बूंद नहीं। उसके साथ मांस-हड्डी और सब कुछ चाहिए।

इसलिए—
जवानो सोने का अब वक्त नहीं है।
जगो तुम और औरों को जगाओ।
मच्छरों के जलने से चिता नहीं दहकती।
इसलिए मौत के साथ तुम आखों को मिलाओ।१।
समय आ गया है शान्ति से न शान्ति,
शान्ति के लिए तुम क्रान्ति को जगाओ।
कानन की अग्नि फूंकों से नहीं बुझती
अतः संगठित हो घोर आंधी को उठाओ।।२।।
चाहे आज करो तुम कल करो चाहे।
एक दिन सबको जरूर करना है।
इसके बिना जब शान्ति ही नहीं है।
तो मुक्ति को पाने को मन्जिल भी नहीं है।

—दीनानाथ सिद्धान्तालंकार

तराजू के पलड़े पर
"नैकटाई" बनाम "यज्ञोपवीत"

"नैकटाई" नहीं, नाक कटाई

◆

"नैकटकाई" का हिन्दी अनुवाद पिछले दशक में किसी ने "कँठ लंगोट" कर दिया था। अनुवाद के इस शब्द को लेकर हिन्दी विरोधी अँग्रेजी समाचार-पत्रों ने खूब बे सिरपैर की उड़ाई। हिन्दी की खिल्ली उड़ाने के लिए उन्होंने इसे अच्छा मौका समझ लिया। पर, गोरे शासकों के इन मानस पुत्रों को शायद यह याद नहीं रहा कि उनकी अपनी प्राणप्यारी सात समुद्र पार की भाषा में अनेक शब्द ऐसे हैं जिनमें मूल शब्द का जड़ से ही सत्यानाश कर दिया गया है। हर किसी को पसन्द आने वाली भिंडी सब्जी, भारत में सर्वत्र पायी जाती है। अँग्रेजी में इसे "लेडीज फिंगर" कहते हैं। भला सोचिए हिंदी के मूल शब्द के साथ अँग्रेजी के इस शब्द की भला क्या तुक है ? पर नहीं भारत के काले अँग्रेज "भिंडी" कहने की अपेक्षा "लेडीज फिंगर" कहने में अधिक गौरव अनुभव करते हैं।"

खैर, हमें "नेकटाई" के लिए "कँठ लँगोट" शब्द के प्रयोग के पक्ष-विपक्ष पर बहस नहीं करनी है। हिन्दी तो बड़ी उदार भाषा है उसका हाज्मा मजबूत हैं। उसने देशी-विदेशी भाषाओं के हजारों शब्दों को तत्सम के रूप में आत्मसात् कर लिया है। तब, "नैकटाई" को भी गले से नीचे निगलने में उसे पेट दर्द नहीं होगा।

वैतरणी पार करने के लिए गो पुच्छ सदृश

आजकल "नेकटाई" का बहुतायत से प्रचार हो रहा है। इसे "सभ्यता" "फैशन" "अधुनिकता" "चुस्ती" का चिन्ह समझा जा रहा है। छोटे-छोटे बच्चों—विशेषतः पब्लिक स्कूलों में जाने वालों—के गणवेष का यह अनिवार्य

अँग बन गयी है। "नैकटाई" के बिना दफ्तर में जाना क्लर्क अपने लिए कसरते शान समझता है। आध्यात्मिक जगत् में पामर से लेकर मोक्ष तक कई सीढ़ियां हैं और मुमुक्षु प्रत्येक सीढी पर चढ़ता हुआ अन्तिम सीढ़ी पर पहुँच कर परम आनन्द प्राप्त करता है। सरकारी व्यूचक्र में भी क्लास फोर की निम्नतम सीढ़ी से लेकर सेक्रेटरी के अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने की कई सीढ़ियाँ हैं। पर इनमें से वही प्रत्येक सीढ़ी पर द्रुतगति सेबढ़ सकेगा, जिसकी "नैकटाई" उसके साहब की दृष्टि में अधिक चमकदार और "अप-टु-डेट" होगी। हमने ऐसे व्यक्तियों को दफ्तरों में जाते देखा हैं जिन्होंने नीचे तहमत और ऊपर कमीज के ऊपर "नैक टाई" बांधी होती हैं। वे समझते हैं, वैतरणी पार करने के लिए गौ की पूँछ पकड़ने के सदृश नेकटाई भी दफ्तर की फाइलों के महासागर को पार करने के लिए अचूक साधन है।

"नैकटाई" के प्रचार में नेहरू का सहयोग

"नेकटाई" का दूसरे शब्दों में कहें तो, पाश्चात्य वेष-भूषा का भारत में इस समय इतने अधिक प्रचार की जिम्मेदारी, बहुत कुछ नेहरू जी पर है। उन्होंने स्वतन्त्रता के वाद, विदेशी शक्तियों को प्रसन्न करने के लिए राष्ट्रीय वेष का जो स्वरूप निश्चित किया उसके दो विकल्प रखे। पहला, चूड़ीदार पायजामें के साथ वन्द गले की जयपुरिया अचकन, दूसरा नैकटाई के साथ कोट पतलून। नेहरूजी स्वयं जब विदेश जाते थे, अपने प्रधान मन्त्रित्व काल में और वे लगभग प्रतिवर्ष ही विदेश प्रचार करते थे, तब वहाँ जाकर पाश्चात्य वेष धारण कर लेते थे। इस प्रकार, भारत में उनका जो वेष होता था, विदेशों में जाकर वह एकदम यूरोपीय हो जाता था। जहाँ तक कि एक वार संसद में उनके इस विदेशी परिधान पर प्रश्नोत्तर काल में, कुछ सदस्यों ने शिकायत भी की थी। नेहरू सरकार में कुछ समय के लिए व्यापार-वाणिज्य मन्त्री श्री प्रकाश, रहे थे। उन्होंने अपने एक वक्तव्य कहा था कि स्वतंत्रता के उत्तर काल में "नेकटाई" और पाश्चात्य परिधान के वस्त्रों का बड़ी मात्रा में आयात हो रहा है। इसके फलस्वरूप, विदेशी मुद्रा का ह्रास होने से देशको आर्थिक क्षति सहनी पड़ रही है। भारत के जल वायु और विशेपत: स्वास्थ्य की दृष्टि से "नेकटाई" और कोट-पतलून इत्यादि वेप हानिकारक हैं। इस वेष में गर्दन और शरीर के अन्य अंगों का निर्बाध और वल रहित संचालन नहीं हो पाता। रक्त संचरण में रुकावट होती है जिससे रक्त चापका रोग पैदा होता है। आजकल यह रोग बहुत बढ़ रहा है। सफरी बिस्तर वन्द (होलडोल) तरह व्यक्ति सदा कसा और खिंचा रहता है शरीर के सब अँगों तक की शुद्ध वायु न पहुँचने से त्वचा सम्बन्धी रोग पैदा हो जाते हैं। आजकल अंग्रेजी

इस प्रकार के फैशन परस्त इन व्यक्तियों के लिए एक शब्द का प्राय: प्रयोग किया जाता है। वह है "ह्वाइट कालर" अर्थात् सफेद कालर (नैकटाई) धारी व्यक्ति। ये लोग हाथ की मेहनत और अपना काम स्वयं करने से परहेज करते हुए, केवल, कुर्सी तोड़ने और दूसरों पर रोब गाँठने में ही अपनी इति कर्त्तव्यता समझते हैं

"टाई" और "नैक" का लक्षण

'नेकटाई" का लक्षण ऑक्सफोर्ड डिक्शरी में इस प्रकार किया गया है: A narrow bond of Woven or Knitted material placed mind the neck and tied or Knitted in front अर्थात्—बुनी हुई अथवा ऊनी चीज का एक तंग टुकड़ा जो गर्दन के चारों ओर रखा और सामने बाँधा व गाँठ दिया जाता है पर इस प्रकार के खास ढंग के बने वस्त्र खण्ड के गर्दन में बाँधने से रक्त प्रवाह में रुकावट आती है "गर्दन" का लक्षण करते हुए ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में कहा गया है कि "शरीर का वह अँग जो सिर और धड़ के बीच में है। इस गर्दन की हड्डियाँ ऊपर की ओर संख्या में सात हैं और इसमें शक्ति युक्त पुठ्ठे हैं जो सिर को सहारा व गति देते हैं। इस गर्दन के सामने वायु-नालिका और पीछे अन्न नालिका हैं। इनके बीच में ऐसी नस नाड़ियाँ हैं जो मस्तिष्क को रक्त पहुँचाती हैं। जब इन नस-नाड़ियों को "नैकटाई" द्वारा कस दिया जाएगा, तब, स्वभावत: मस्तिष्क की ओर रक्त गति में बाधा पहुँचेगी और वायु-नालिका भी ठीक प्रकार से काम नहीं कर सकेंगी।

स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त घातक

कुछ लोग "नैक टाई" के पक्ष में यह दलील देते है कि इससे गर्दन अकड़ी रहती है, और वह झूलती नहीं है। पर, वस्तुत:, यह अकड़ ही हानिकारक है क्योंकि इससे रक्त सँचार में रुकावट पैदा होती है। स्वास्थ्य का यह मुख्य नियम है कि शरीर में रक्त सँचार तीव्र गति से और शरीर के प्रत्येक अँग के अन्तिम छोर तक स्वच्छन्द रूप से होना चाहिए। गले की वह हड्डी जो बाहर उभरी हुई दिखाई देती है, शरीर का अत्यन्त कोमल और नाजुक स्थान है। जब फाँसी दी जाती है, अथवा जब कोई आतमहत्या करता है, तब इस हड्डी पर रस्सी या फाँसी का फन्दा बाँधा जाता है। इस हेतु तत्काल प्राण निकल जाते हैं। "नैकटाई" शरीर के इस अत्यन्त कोमल और संवेदन शील अंग पर निरन्तर दबाव डालकर इसे निर्बल और श्वास-प्रश्वास तथा रक्त संचारन सम्बन्धी रोगों का संकट पैदा कर देती है। इसीलिए भारतीय वेष में खुले व अनिवार्य वस्त्र पहनने की ही परम्परा है ताकि प्रत्येक अंग की त्वचा तक शुद्ध

वायु पहुँच सके और रक्त गति भी निर्बाध हो। गर्दन से लेकर मणिएक तक को नंगा ही रखा जाता है। संस्कृत में शरीर के इस भाग को "उत्तमांग" नाम दिया गया है। "उत्तमांग" के स्वस्थ रहने का प्रभाव विचारों पर भी अवश्य पड़ता है। जिस समय रात को मनुष्य सोता है, वह, स्वभावतः, कसे हुए वस्त्र उतार कर ढीले कपड़ों का व्यवहार करता है। इसका स्पष्ट अभिप्राय यही है कि मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त कसे और खिंचे हुए वस्त्र—जैसे आज कल लड़के-लड़कियों का फैशन चल पड़ा है और इसमें "नैक टाई" भी शामिल है—अत्यन्त हानिकारक हैं।

भारत की गरीबी और यह टाई

फिर, खर्च की दृष्टि से देखा जाए तो "नैकटाई" कितनी महँगी पड़ती है। सामान्य ढंग की "नैक टाई" भी चार-पाँच रु० से कम की नहीं आती है। "फिलिप्स" और "जोडेक" की "नैक टाई" फैशन की और बढ़िया समझी जाती हैं। यह १०-११ रु० तक मिलती है। भारत जैसे गरीब देश में जहाँ प्रत्येक व्यक्ति की औसतन आय २० रुपये मासिक है वहाँ इस मंहगी और स्वास्थ्य नाशक वस्तु की भला क्या उपयोगिता है? पश्चिम की अन्ध गुलामी और हानिकारक फैशन पर आसक्ति के अतिरिक्त इसे क्या कहा जा सकता है?

नैकटाई प्रारम्भिक इतिहास—गले में रेशम की पट्टी से

"नैकटाई" का इतिहास भी गुलामी और मजहबी पक्षपात का सूचक है यद्यपि इसका प्रारम्भ विचित्र ढंग से हुआ। निश्चित ही, यह पश्चिम की उपज है। सीरिया और रोम में सिपाहियों को अन्य लोगों से पृथक् प्रकट करने और विशिष्ट दर्शाने के लिए उन्हें गले में रेशमी पट्टी बाँध लड़ने के लिए जाना पड़ता था। एलेगजेंड्रिया में रेशम के महीन तागे बाँधे जाने लगे। रोम में एक समय ऐसा भी आया जब पुरुषों के लिए गले में रेशम की पट्टी बांधनी वर्जित कर दी गई, केवल महिलाएँ सौन्दर्य-वृद्धि के लिए बाँधती थीं। रोम साम्राज्य की राजधानी जब रोम नगर से कांस्टिनोपल में आई, तब पादरियों के लिए गले में रेशम की पट्टी बाँधना वर्जित कर दिया गया। उस समय रेशम केवल चीन से ही यूरुप में आयात होता था। लगभग ६०० वर्ष तक चीन का यह धंधा चलता रहा। फिर रोम में ही रेशम का उत्पादन होने लगा।

गले में रेशम की पट्टी बाँधने के बाद यूरोप में ऐसी कमीज़ पहनने का फैशन चला कि जो समूचे गले को भी ढांप देती थी। उत्तर प्रदेश के पूर्वी

जिलों की मिरजई की तरह इसमें डोरे लगे होते थे । इन्हें [illegible] गर्दन में बाँध दिया जाता था, पुरुषों को कमीज़ के ऊपर और स्त्रियों की कमीज़ के नीचे । इन्हें खूब कसकर गले से बाँध दिया जाता ताकि गर्दन अकड़ी रहे।

"नेकटाई" का प्रारंभ कोट-कमीज़ में लगने वाले बटनों के बाद हुआ । ईसा से दो हजार पूर्व बटनों का चलन नहीं था । बटनों के स्थान पर वृक्षों के काँटे और बाद में पिन लगाये जाने लगे । गर्दन तक पहनी जाने वाली कमीज़ के डोरों के बदले पहले बटन और फिर कमीज़ के गर्दन के अंश को छोटा कर गले में रेशमी पट्टी—इस प्रकार क्रमशः नैकटाई का प्रारम्भिक विकास हुआ ।

ईसा की फाँसी का चिन्ह—ईसाई मत की साजिश

मध्य युग में जब यूरुप में ईसाइयत का जोर था और पादरियों का ही राज्य था, उस समय ईसा को फाँसी दिये जाने की कहानी सेंट पीटर इत्यादि प्रमुख पादरियों ने गढ़ी । ईसा को सचमुच फाँसी पर चढ़ाया गया—यह अभी तक ऐतिहासिकों की दृष्टि में विवाद का विषय है । पर पादरियों ने यहूदियों के विरुद्ध इस मन-घड़न्त कहानी का बड़ा प्रचार किया । कहा गया कि ईसा के दोनों हाथों को पीछे खड़े किए फाँसी के तख्ते के दोनों ओर फैला कर उनमें कीलें गाड़ दी गईं, उसके सिर को तख्ते के साथ बाँध दिया गया और गले की उभरी हुई हड्डी में फांसी की रस्सी बाँध दी गई और झटका दे कर, ईसा का जीवन समाप्त कर दिया गया। ईसाइयत का चिह्न "क्रास" और "नेकटाई" दोनों इसी फाँसी पर चढ़े ईसा की शारीरिक स्थिति के प्रतीक हैं । यूरुप के मध्य युग में चूंकि राज्य शक्ति ईसाइयों के हाथ में थी, और धर्म के ठेकेदार भी पादरी बने हुए थे, इसलिए, इस "नेकटाई" को ईसा के चिर स्मारक के रूप में "क्रास" की नकल में गले के साथ जोड़ दिया गया । गले के साथ इसलिए जोड़ा गया क्योंकि शरीर के किसी निम्न अंग के साथ जोड़ने से ईसाइयत का पाखंड न चल पाता और गले के साथ शरीर का ऊपर का हिस्सा ही ऐसा है जो हमेशा दूसरे के सम्मुख रहता है तथा शरीर में भी उच्च स्थानीय है । इस मध्य युग के कुछ वैज्ञानिकों और डॉक्टरों ने इसका विरोध किया पर उस युग के ईसाई शासक और पादरी तो विज्ञान के कट्टर शत्रु थे । उनका विरोध टिक न सका । समय के साथ 'नेकटाई" की बनावट में भी परिवर्तन आ गया, इसे फैशन का अपरिहार्य अंग माना जाने लगा । इधर ईसाई मत का जोर खत्म होता गया और उधर इसका फैशन बढ़ता गया । गोरे विदेशी शासकों के आगमन के साथ भारत में भी इसका चलन होने लगा । स्वतंत्रता—उत्तर युग में तो मानों इसकी बाढ़ ही आ गई है ।

“नेकटाई” सर्वव्यापक—तिलक, त्रिपुंड, गाँधी टोपी के साथ भी

अब स्थिति यह कि गले में “नेकटाई” है, नीचे कंठी है और माथे पर तिलक व त्रिशूल के मार्के लगे हैं। धर्म मन्दिरों, सत्संगों और धर्म सभाओं में “नेकटाई” का अप्रतिहत प्रवेश है, लांग वाली धोती के साथ “नेकटाई” है, गाँधी टोपी और खुले गले की जवाहर जाकेट के साथ “नेकटाई” है। आर्य समाज, सनातन धर्म सभा, कीर्तन मण्डली, भगवती का रात पर चिल्ला-चिल्ला कर जागरण——करने वाले और गुरुद्वारों के अधिकारी और नेता——सब बड़ी——शान के साथ “नेकटाई” बाँधे अपने धर्म स्थानों में आकर – जमते, भगवत् भक्ति करते और ईश्वर दर्शन के उत्सुक बने हुए हैं। विदेशी शासन काल में जिसे “देश द्रोह” और “सरकारी गुलामी” का चिह्न, समझा जाता था, आज वही सब धार्मिक संस्थाओं और राजनीतिक दलों के लिए, अनिवार्य रूप से आराध्य बन गई है। पहले जो नौकर शाही के दफतरों तक ही सीमित थी, आज वह घर-घर में बच्चे-जवान-बूढ़े सबके लिए शिरोधार्य बन गई है।

नैकटाई पहने “वैदिक धर्म की जय” और “हर-हर महादेव”

अभी तक साड़ी के साथ “नेकटाई” का गठ बँधन नहीं हुआ है पर हाल ही में ‘मिनी साड़ी” आविष्कार से शीघ्र ही महिलाओं के मंगलसूत्र के ऊपर यह प्रतिष्ठित होने वाली है। “वैदिक धर्म की जय” “हर-हर महादेव” के आकाश भेदी नारे लगाने वाले आज किस प्रकार अनायास ही इस प्रवाह बहते हुए “नेकटाई” लगाये ईसाके पूजक बन रहे हैं—खतरे का यह घण्टा अभी तक। फैशन पर इन हिन्दुओं, के बहरे कानों तक पहुँच नहीं पा रहा है। यह कितनी बड़ी विडम्बना है!!! इस “नेकटाई” ने जिसे सबसे पहले अर्द्धचन्द्र दिया है—वह है बेचारा तीन सूत्रों का बना यज्ञोपवीत!! इसकी जीवन व्यापी महिमा और गरिमा को हम लगातार भूल पथभ्रष्ट हो रहे हैं!!

सचमुच, यह “नेकटाई हमारे लिए “नाक कटाई” के सदृश ही है।

★★

भारत के धर्म और संस्कृति से प्यार है तो
आज ही नेकटाई छोड़ने की प्रतिज्ञा करें
—सं०

मानव जीवन में
यज्ञोपवीत
तारतम्यता का प्ररक

उपनयन – कौन किसके समीप और किस प्रकार ?

वैदिक धर्मियों के लिए निश्चित १६ संस्कारों में दसवाँ संस्कार "उपनयन" है जिसे "यज्ञोपवीत" भी कहा जाता है। "उपनयन" का शब्दार्थ समीप लाना है। किसके समीप किसे लाना ? मातापिता के पास से बालक को आचार्य के समीप लाया जाता है। माता पिता के लाड़-प्यार से पले बालक के जीवन में एक नया अध्याय प्रारम्भ होता है। मातापिता के लिए और सुकुमार बालक के लिए भी, दोनों का एक दूसरे से पृथक् होना और दूर हट जाना स्नेह के कोमल तन्तुओं को प्रबल झटका देने सदृश ही है। पर, वैदिक धर्म में इस झटके का सुन्दर, वैज्ञानिक ढंग से उपशमन किया जाता है। बालक घर से दूर आचार्य कुल में ले जाया जाता हैं। यहाँ आचार्य ईश्वर को साक्षी कर बालक को सामने बैठा, यज्ञाग्नि के समीप, घोषणा करता है कि जिस प्रकार सन्तान मातृ गर्भ में सर्वथा सुरक्षित रहती है और उसे ९ मास तक कुक्षि में रख, पुष्ट और स्वस्थ बना माता अपनी गोदी में अवतरित करती हैं, इसी प्रकार तुझे मैं अपने गर्भ में धारण करता हूँ, अर्थात्, संसार के अज्ञान-प्रलोभन-मोहमाया वृत झंझावताओं से सुरक्षित रख, युवावस्था तक तेरा दायित्व सँभाल, जगत् के भीतर तुझे प्रविष्ट करा देता हूँ, जहाँ तू भावी जीवन सरणी पर सुचारू रूप से अग्रसर हो सकेगा। यहाँ ब्रह्मचारी कहता है—

"ब्रह्मचर्यं मागाम ब्रह्मचर्य सानि"

मैं ब्रह्मचारी बनने के उद्देश्य से आपकी सेवा में आया हूँ, आप कृपा कर मुझे ब्रह्मचर्य—ईश्वरीयज्ञान—की शिक्षा शिक्षा दीजिए। आचार्य कहता है, "मैं तुझे ज्ञान-विज्ञान रूपी ऐसे वस्त्रों से आवृत्त करता हूँ, जो "अमृत" रूप, अर्थात्, अविनाशी हैं और इससे तुझे दीर्घायु, बल और वर्चस्व प्राप्त होगा।" (पारस्कर गृह्य सूत्र २।२।७) इसके बाद निम्नलिखित मंत्र से आचार्य शिष्य को उपर्युक्त दोनों के मध्य हुई प्रतिज्ञा के प्रतीक रूप यज्ञोपवीत देता है—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं, प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रति मुंच शुभ्रं, यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।।
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्यत्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ।
(पार २।२।११)

इस मंत्र में ही यज्ञोपवीत का उद्देश्य बता दिया गया है। यह सूत्र पावन यज्ञ द्वारा धारण किया जा रहा है, परम पवित्र, आयुवर्धक, सबसे मुख्य, प्रजापति ईश्वर की कृपा से मानव के जन्म के साथ ही प्राचीन काल से प्राप्त है। हे ब्रह्मचारी तू उसे धारण कर। इससे तुझे बल और तेज प्राप्त होंगे। हे यज्ञ सूत्र ! तू यज्ञ द्वारा धारण किया जा रहा है। मैं तुझे यज्ञ की पवित्र भावना द्वारा धारणा करता हूँ।

तीन सूत्र—तीन व्रत

इस मंत्र में आचार्य शिष्य के सम्मुख एक स्पष्ट जीवन-पथ और उस पर यात्रा के साधन समुपस्थित करता है। सबसे पहला कर्तव्य यज्ञ द्वारा, (१) माता, पिता, आचार्य, विद्वान्, वयोवृद्ध इत्यादि के प्रति सदा आदर और विनम्रता की भावना, (२) जीवन यात्रा में संगठन और समन्वय का पालन करना और (३) समाज, राष्ट्र और विश्व से केवल लेना ही नहीं, किन्तु, उसके बदले कुछ देना, त्याग करना और सामूहिक जीवन में आ रही क्षति को अपनी सेवा भावना से सदा पूरा करना—यह सब "यज्ञ" की विशाल भावना के द्योतक वेद के उपदेश हैं। इस प्रकार की भावना से ग्रहण किया गया यह त्रिसूत्र शिष्य को तीन व्रत धारण करने की प्रेरणा देता है—(१) जीवन उत्कृष्ट बनाऊंगा, (२) जीवन को नियमित बनाऊंगा और (३) जीवन को बल व तेज युक्त बनाऊंगा। यज्ञ की भावना सहित यह यज्ञोपवीत तीनों व्रतों के पालन की शक्ति देता है।

यज्ञोपवीत की उपेक्षा—अधः पतन का प्रमुख कारण

जब छात्र बालचर मंडल (ब्वाय स्काउट कोर) का सदस्य बनता है, तब उसे तीन प्रतिज्ञाएँ लेनी पड़ती हैं जिनमें अपने प्रति, राष्ट्र के प्रति, और ईश्वर के प्रति निष्ठावान् होने की घोषणा करनी पड़ती है और इस संस्था के विशिष्ट रूप से बने रूमाल में तीन गाँठे बाँधनी पड़ती हैं। राजनीतिक क्षेत्र में जब कोई व्यक्ति संसद् सदस्य बनता, अथवा, मंत्री, उपमंत्री, प्रधान मंत्री, राष्ट्रपति, हाईकोर्ट का न्यायाधीश इत्यादि ऊँचे और दायित्व पूर्ण ओहदे को ग्रहण करता है, तब कानून के अनुसार, उसे देश के प्रति निष्ठा और कर्तव्य पालन की शपथ ग्रहण करनी पड़ती हैं। जब कोई व्यक्ति फौज व पुलिस में भरती होता है तो उसे

भारी संख्या में उत्सवों पर्वों और विशेष अवसरों पर बाँटिए

१. **आर्य समाज क्या मानता है ?**—पंडित मदनमोहन विद्यासागर लिखित ।

२. **आर्यसमाज की मान्यताएँ**—स्व० पं० रामचन्द्र जी देहलवी की भेंट

३. **मूर्ति पूजा की हानियाँ** महर्षि दयानन्द की प्रभावपूर्ण लेखनी से

४. **विश्व को वेद का संदेश** भारतेन्द्रनाथ साहित्यलंकार लिखित

५. **महर्षि दयानन्द की विशेषताएँ**—स्व० महात्मा नायायण स्वामी जी लिखित

इन सभी आकर्षक आवरण, बढ़िया कागज वाले ट्रैक्टों का मूल्य है केवल १०) सैकड़ा

६. **वैदिक भक्तिवाद** —पं० जगत् कुमार शास्त्री लिखित, १५) सैकड़ा

७. **सामवेद**—अंग्रेजी भाष्य—पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड कृत—मूल्य १५) किन्तु जनज्ञान के सदस्यों को केवल १०) में

घर-घर दयानन्द का संदेश गुंजाने के लिए प्रभावशाली साहित्य का प्रयोग कीजिए ।

१—अपना आदेश भेजते हुए रेलवे स्टेशन का नाम लिखें ।

२—चौथाई धन अगाऊ भेजें ।

जनज्ञान प्रकाशन १५९७ हरध्यानसिंह रोड नई दिल्ली-५

आवश्यक सूचना

प्रभावशाली एवं पूर्ण विधि के अनुसार वैदिक 'विवाह संस्कार', 'मुण्डन संस्कार' अथवा नामकरण संस्कार' आदि विविध संस्कारों के लिये विशेष विद्वान् एवं सटीक व्याख्याता, कर्मकाण्ड-मर्मज्ञ श्री पं० अभिविनय भारथी विद्यावाचस्पति की सेवाएं उपलब्ध की जा सकती हैं।

दिल्ली में बाहर से आने वाले बारातियों के लिए सूचित करने पर विवाह मण्डप, वेदी तथा समस्त आवश्यक सामग्री सहित पूर्ण व्यवस्था भी की जा सकती है।

पं० अभिविनय भारथी
पता :—एक्स-१०, वेस्ट पटेल नगर मार्कीट
नई दिल्ली-८

फोन : ५८३३४३

करताहै, हे प्रभो ! जिस प्रकार सूर्य अपनी रश्मियों से चारों ओर जगमगाता है, इसी प्रकार यथार्थ ज्ञान प्राप्ति के लिए तीन सूत्रों वाले इस यज्ञोपवीत को धारण कर ज्योतिर्मय बनता हूँ।

इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपने जन्मके साथ तीन ऋण लेकर आता है। क्या किसी व्यक्ति के लिए सभव है कि वह लोहे और लकड़ी से बने हल से लेकर थाली में रखी रोटी तक—सारे काम, अ से क्ष तक, अपने आप करे ? निश्चय ही, उसे दूसरों पर निर्भर करना ही पड़ता है। उसे दूसरों का सहयोग लेना और दूसरों को सहयोग देना —दोनों काम एक साथ करने पड़ते हैं। इन दोनों प्रकार के कर्तव्यों का सन्तुलन ही सामाजिक जीवन है। वस्तुतः, मानव सर्वथा स्वतन्त्र और आत्म निर्भर नहीं रह सकता। जन्म के प्रथम क्षण से ही वह दौड़ भाग नहीं सकता और न ही विद्वान् बन सकता है। माता पिता व अन्य किसी व्यक्ति द्वारा एक निश्चित आयु तक, उसका पालन-पोषण अवश्य होना चाहिए और अपने अध्यापकों व गुरुजनों से शिक्षा प्राप्त करनी ही पड़ती है। वैदिक सभ्यता के अनुसार इन तीनों ऋणों का नाम, क्रमशः, ऋषि ऋण (अथवा सामाजिक ऋण), पिय ऋण और आचार्य ऋण है। मानव को इस संसार से कूच करने के अन्तिम क्षण तक, ऋषि मुक्त होने के लिए सदा यत्नशील रहना चाहिए। जीवन का यह लक्ष्य तभी पूरा हो सकता है, जब वह सदा हमारे मन, मस्तिष्क और चिन्तन में रहे। शरीर के साथ प्रति क्षण स्पर्श करने वाले यज्ञोपवीत के तीनों सूत्र मानव को सदा चेतावनी देते हैं कि "हे मनुष्य ! तू ग्रस्त गुरु है, और इस ऋण बोझ से मुक्त होने के लिए कभी प्रमाद मत कर।" वेदों के निम्न मंत्र में ऋण-मुक्त होने की कितनी भावपूर्ण और सुन्दर प्रार्थना की गयी है—

अनृणा अस्मिन्न नृणा परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोका सर्वान् पथो अनृणा आक्षियेम ॥
अथर्व ६।११७।३

हे प्रभो ! हमें ऐसी शक्ति दो जिससे हम इस लोक में, दूसरे लोक में और तीसरे लोक अर्थात्, जन्म में भी ऋण रहित हों। विद्वानों और माता पिता और ऋषियों के जो मार्ग हैं—उन सब को हम ऋण मुक्त होकर ही पार करें दूसरे शब्दों में, मातृसभ्यता, मातृभूमि और मातृभाषा के हम सदा ऋणी हैं।

उपनयन—अभ्युदय और निःश्रेयसका प्रेरक

इस प्रकार यज्ञोपवीत के तीन सूत्र मानव के चतुर्दिक अभ्युदय और निःश्रेयस के प्रेरक, मार्गदर्शक और ज्योतिस्तम्भ हैं। जीवन यात्रा के लिए यज्ञ द्वारा पवित्र तीनों सूत्र मील के पत्थरों के सदृश लक्ष्य प्राप्ति प्रेरक हैं। आर्यजाति एक मात्र इसी साधन का अवलम्बन कर अपने लुप्त गौरव को पुनः प्राप्त कर सकती है "नैक टाई" जहाँ, जाति की नाक काटने वाली है, वहाँ उपवीत के तीनों सूत्र जाति और राष्ट्र के उन्नायक तत्त्व हैं। ●

"जन-ज्ञान के नियम"

१. "जन-ज्ञान" मासिक पत्रिका है। इसका उद्देश्य—(अ) महर्षि दयानन्द के लक्ष्य को पूर्ण करना। (ब) संसार के प्रत्येक व्यक्ति तक वेद का पावन संदेश पहुँचाना। (स) अज्ञान, पाखण्ड की समाप्ति के लिए प्रत्येक सम्भव पग उठाना है।

२. "जन-ज्ञान" में व्यक्तिगत राग द्वेष और पार्टी बाजी के लेख व सूचनायें किसी भी स्थिति में प्रकाशित नहीं किये जायेंगे।

३. वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध विज्ञापनों का प्रकाशन भी किसी भी स्थिति में नहीं होगा।

४. "जन-ज्ञान" का वार्षिक शुल्क दस रुपया, एक प्रति ८० पैसे है। सदस्यों को विशेषांक वार्षिक मूल्य में ही दिए जायेंगे।

५. प्रत्येक माह की दो तीन तारीख को 'जनज्ञान' भेज दिया जाता है। यदि दस तक भी न मिले तो समझिये आपका 'जन-ज्ञान' कोई और पढ़ रहा है। दस तारीख तक 'जन-ज्ञान' न मिले तो अपने पोस्ट आफिस को पत्र लिखें और एक प्रति हमें भेजें। पत्र प्राप्त होने पर 'जन-ज्ञान' दुबारा बिना टिकट लगाये बैरंग भेजा जाएगा। **बीस तारीख के बाद किसी भी शिकायती पत्र पर ध्यान नहीं दिया जाएगा।**

६. विशेषांक सुरक्षित मंगाने के लिये पचहत्तर पैसे के टिकट पन्द्रह दिन पूर्व आने चाहियें। विशेषांक दुबारा न भेजे जायेंगे।

७. किसी भी प्रकार का पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या लिखना न भूलें।

८. समस्त चैक, मनीआर्डर आदि **"जन-ज्ञान प्रकाशन"** के नाम भेजें।

९. नये सदस्य धन भेजते समय 'नया सदस्य' शब्द अवश्य लिखें और मनिआर्डर कूपन पर पूरा पता अवश्य लिखें।

१०. "जन-ज्ञान" के सदस्यों को 'जन-ज्ञान प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य पौने मूल्य में दिया जायेगा।

प्रबन्धक

जन-ज्ञान प्रकाशन

१५९७, हरध्यानसिंह रोड़, करौल बाग,
(निकट ३१ नाई वाला) नई दिल्ली-५

फोन : ५६६६३९

पाठकों के पत्र : सम्मतियाँ

मान्यवर श्री भारतेन्द्र नाथ जी,

"वैदिक अध्यात्म ज्योति" की प्रतियां प्राप्त हुईं। आपने बड़ा अनुग्रह किया है। इन मंत्रों का पठन मनन कर मन में शान्ति का अनुभव करूँगा।

आपकी इस कृपा के लिए मैं तथा मेरे सब सहयोगी आपके अत्यन्त ऋणी हैं।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, नागपुर **—मा० सा० गोलवलकर**
के सर संघ संचालक :

'जनज्ञान' मुझे निरन्तर मिल रहा है। इसके माध्यम से आप वैदिक धर्म और संस्कृति के उद्धार का जो पावन व्रत लेकर आगे बढ़ रही हैं, वह निश्चय ही अभिनन्दनीय है। समय-समय पर सिद्धान्त परक विशेषांक प्रकाशित करने की जो योजना आपने आर्य जगत् के कल्याण के लिए प्रस्तुत की है उसे देख कर निश्चय ही 'जनज्ञान' के उज्जवल भविष्य का आभास हो जाता है। मैं आपके इस सत्साहस की प्रशंसा करते हुए 'जनज्ञान' की उत्तरोत्तर सफलता का आकांक्षी हूं। आशा है आप दृढ़ मन और पावन सकल्प से इसे ऐसे पथ का पथिक बनायेंगे, जो न केवल इसके चिरायु रूप का साक्षी होगा, प्रत्युत उससे अखिल मानवता को श्रेयस्कर संदेश प्राप्त होगा।

—क्षेमचन्द्र "सुमन"

सहित्य एकाडमी, नई दिल्ली

---

५१ रुपये का एक चैक पंजाब नेशनल बैंक का इस लिफाफे में भेज रहा हूँ। साहित्य-प्रचार के पुनीत कार्य के लिए इस भेंट को स्वीकार कर कृतार्थ करें। जिस संलग्नता तथा उत्साह से आपके द्वारा यह कार्य किया जा रहा है निस्सन्देह वह प्रशंसनीय है। इस प्रकार के यज्ञमय कार्य में प्रभु देव स्वयं सहायक होते हैं।

—बलदेव वानप्रस्थी

बिजनौर

अध्यात्म ज्योति के प्रति

प्रिय बहिन राकेश रानी

विशेषांक "जनज्ञान" पत्रिका का आकर्षक, मन भावन ।
बोध रात्रि पर प्राप्त हुआ, "वैदिक अध्यात्म ज्योति" पावन ।।
है सचित्र, संक्षिप्त साथ ऋषि जीवन गाथा अति शोभन ।
है आबाल वृद्ध सबको शिक्षा प्रद, हितकर, मनरंजन ।।
पढ़ा अमित श्रद्धा से मैंने विशेषांक वह आद्योपान्त ।
हृदय हर्ष से हुआ प्रफुल्लित, पूर्ण शान्त, निर्भ्रान्त नितान्त ।।
सन्त "अनुभवानन्द शान्त" बहु सद् ग्रन्थों के निर्माता ।
थे प्रभु भक्त, विरक्त, वेद-अनुरक्त, वाग्मी, व्याख्याता ।।
उन्हीं मनीषी, महिमा मण्डित, महामना द्वारा विरचित ।
कृति "वैदिक अध्यात्म ज्योति" से होंगे जनगण-मन ज्योतित ।
"विशेषांक" अति भव्य आपने किया प्रकाशित है जन-हित ।
अतः आप हैं प्रशंसनीया "भारतेन्द्र नाथार्य" सहित ।।

—प्रकाशचन्द्र "कविरत्न"

अजमेर

"जनज्ञान" का वेद व्याख्याङ्क मिला। देखकर, पढ़कर, अत्यन्त ही प्रसन्नता एवं हर्ष हुआ। आपका आवरण पृष्ठ जितना मन मोहक एवं आकर्षक है, उससे अधिक सुन्दर एव हृदयग्राही अन्दर वेद मन्त्रों की हिन्दी व्याख्या है। निश्चित ही जनज्ञान के इस प्रकार के विशेषाङ्क वेद प्रचार के मुख्य, उपदेश प्रदीप साधन हैं। इस विशेषाङ्क के प्रकाशन पर आप को हार्दिक बधाई हो।

—ओंकार मिश्र "प्रणव"

फिरोजाबाद

वैदिक धर्म की जवलन्त प्रतिमा "जनज्ञान" के दोनों अंक मिल गये। मैं आपके महान् प्रयासों को श्रद्धा भरा प्रणाम करता हूँ।

—हंसराज खादिम

पत्रकार दैनिक प्रताप

अमृतसर

"आपका भेजा हुआ—"जनज्ञान का वैदिक अध्यात्म ज्योति" विशेषांक शिवरात्रि के उपलक्ष्य में जो आपने भेजा है, वह २ दिन पहले शिवरात्रि से प्राप्त हुआ, चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ—इतनी सुन्दर सज-धज से निकाला गया है, कि उसे बिना पढ़े भी उठनेको जी नहीं चाहता। आप महानुभावों को बड़ी लगन है—ऋषि दयानन्दजी महाराज के सिद्धान्तों के प्रचार और प्रसार की—अति संक्षिप्त नोट तथा चित्रों द्वारा महर्षि के आरम्भ से लेकर अन्तिम समय तक ५०० रु० की थैली देने का दृश्य महर्षि की सहिष्णुता तथा दया का जीवन चरित्र के साथ २ विचित्र चित्र खैंचा गया—पढ़कर "आनन्द" आ गया—सहसा मुँह से निकला "ऋषि दयानन्द" की जय हो। परन्तु वर्क उलटने पर जब सुनसान "भवन" का नोट पढ़ा—तो शिवरात्रि सहसा "दीवाली" में परिणत हो गई। मृतशय्या पर पड़े हुए स्वामीजी और रोने वालों के दृश्य सामने आ गए—और मैं भी उन्हीं में मिल गया। परमात्मा से प्रार्थना है कि आपको बल दे और आर्य महानुभाव आपको तन-मन-धन से सहायता देकर वैदिक धर्म के प्रचार में हाथ बटा कर ऋषि ऋण उतारें और पुण्य के भागी बनें।

—विद्यानन्द शर्मा

वाराणसी शास्त्रार्थ महारथी

'जनज्ञान' का दिसम्बर अंक प्राप्त हुआ। आद्योपान्त पढ़कर हृदय मन्दिर में आनन्दोल्लास की अनुभूति हुई। अभी तक मैं लक्ष्य-प्राप्ति हेतु अज्ञानांधकार रूपी निशि में भटक रहा था, लेकिन 'जनज्ञान रूपी सूर्य की प्रथम किरण ने उचित मार्ग की ओर संकेत किया। राष्ट्र, धर्म और संस्कृति की रक्षा हेतु देश के मानव-मानव—हृदय तक इस ज्ञान का पहुँचना आवश्यक है। वैदिक विचार-धारा का पावन संदेश जन-जन तक पहुँचाने का आपने जो संकल्प लिया है—सराहनीय है। ईश्वर आपको सफलता दे।

—मनीराम चौहान

शिवतला 'शिक्षक'

आप जंगली व ज्ञान प्रकाश जंगली पुस्तक

श्रीमान सम्पादक जी,

निवेदन यह है कि आपके द्वारा प्रकाशित की गई पुस्तक "ज्ञान प्रकाश" हमने पढ़ी पढ़कर दिल को ठेस लगी और अति दुःख हुआ। इस पुस्तिका, में जो आपने दूसरे धर्मों के विरुद्ध प्रचार किया है इससे पाठकों पर कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा बल्कि उनके मन में एक द्वेष की भावना जाग उठेगी। आपने एक दिव्य मूर्ति के महान आत्मा का मजाक उड़ाया है। उसमें सभी धर्मों की बुराइयां करके हिन्दू धर्म को अग्रसर बताया है उन्हें आपस में लड़ाने के लिए जागृत किया जा रहा है। ये हमारे देश और समाज के विरुद्ध है, हमें तो यह आशा है कि आप किसी जनसंघ पार्टी की leader होंगी। अतः आपसे प्रार्थना है कि आप ये बेकार की बातें छापकर जनता को दुःखी न करें। बाइबिल के विपरीत आपने लिखा था। हम आपकी पुस्तक ज्ञान प्रकाश को एक जंगली पुस्तक मानते हैं जिसे आप जैसे जंगली लोगों ने लिखा।

—अज्ञात **ईसाई बन्धु**

—धन्यवाद

प्रिय सपुत्री राकेश रानी जी, परमात्मा आपको सर्वदा सकुशल रखें। कल आपकी भेजी हुई "वैदिक अध्यात्म ज्योति" की २५ प्रतियां मिल गई हैं, ३ ता० को हमें भी जनज्ञान का अंक मिल गया था। स्वाध्याय प्रारंभ कर दिया है बोध रात्रि के उपलक्ष्य में हमने स्त्री आर्य केन्द्रीय सभा की तरफ से एक सप्ताह का कार्यक्रम ता० २८-२-७० से ६ मार्च तक है, मार्च रविवार को सीताष्टमी का त्योहार मनाया गया था। १० रु० के साथ मैं ५ रु० दान रूप में अपनी तरफ से भेज रही हूँ, मेरी आयु ६१ वर्ष की है, और भारतेन्द्र तो मेरा सुपुत्र है, इसलिए मैं आपको सुपुत्री ही कहूंगी। आपके कर्त्तव्यों को देखकर हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। धन्य है आपका जीवन परमात्मा आपके जनज्ञान की दिन दुगनी रात चौगुनी उन्नति करे, यदि मैं तुम्हारे पास होती तो कुछ सेवा करती ? अब तो मेरा आशीर्वाद ही है। परमात्मा हमारी इस युगल जोड़ी को सुरक्षित रखें, जनज्ञान सचमुच मानव कल्याण के लिए बढ़िया साधन है। मैं सदा जनज्ञान की उन्नति चाहती हूँ। साथ आप दोनों के लिए स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवन की कामना करती हूँ। मेरे हृदय से आपके लिए आशीर्वाद निकलते हैं, आपका जीवन धन्य है।

—आज्ञावती

मंत्राणी—महिला आर्य केन्द्रीय सभा, अमृतसर

आपका हर एक अंक एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर होता है। मैं आपके लक्ष्य से पूर्ण रूप से सहमत हूँ। आपका हर एक लेख प्रेरणा दायक तथा मोह निद्रा में सोये हुए आर्यों को जगाने वाला होता है। नेता लोग तो आपस में लड़ते रहते हैं। ऋषि दयानन्द के अधूरे कार्य की ओर बहुत कम ध्यान है। आप अपने पत्र द्वारा ऋषि के संदेश को घर २ पहुँचाने का लक्ष्य लेकर चले हैं। आपको भगवान् इसमें अवश्य सफलता प्रदान करेंगे। मुझे आप दोनों की लगन और उत्साह को देखकर जो प्रसन्नता होती है उसे शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता।

ऋषि भक्तों का दास अनुदास

टोहाना

—बृजलाल गुप्त

आदरणीय बहन,

मैं आपके 'जनज्ञान' का सदस्य हूँ। मुझे जनज्ञान के सभी अंक पढ़ने में रोचक तथा ज्ञानवर्द्धक लगते हैं। आपने अनेक महत्वपूर्ण विशेषांक प्रकाशित कर वेद प्रचार की ठोस सामग्री आर्य जगत को प्रदान की है। वेद ज्योति, वैदिक गीता तथा ज्ञान प्रकाश इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। हमने तथा हमारे साथियों ने इन्हें बड़े ही मनोयोग से पढ़ा तथा ज्ञान लाभ किया। दिसम्बर ६९ का अंक सुन्दर तथा मुखपृष्ठ बहुत ही प्रभावोत्पादक है। विद्वान लेखकों के ज्ञानवर्द्धक लेख तथा सर्वांगीण विकास की सामग्री जनज्ञान में उपलब्ध मिलती है। कागज अत्युत्तम तथा टाइप अच्छा रहता है। वास्तव में इस समय आर्य जगत् में जनज्ञान सा उच्चस्तरीय तथा शानदार कोई भी मासिक पत्र नहीं निकल रहा है। अराष्ट्रीय ईसाइयों के विरोध हेतु आपका अभियान सराहनीय है। जनज्ञान के माध्यम से भारतीय जनता धार्मिकता के निकट आ रही है। जनज्ञान उत्तरोत्तर प्रगति पथ पर अग्रसर होता जाय तथा यह शीघ्र ही साप्ताहिक बने यही प्रभु से प्रार्थना है। आप तथा संचालक जी मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

वेद धर्म का प्रबल-प्रचारक यह जनज्ञान महान है।
ज्ञान पंथ को ज्योति करना इसकी अद्भुत शान है।
इसके पढ़ने से मिट जाता सकल तमस अज्ञान है।
सबको सच्चा मार्ग दिखा करता जग का कल्याण है।
बनें सभी जन इसके ग्राहक ओ३म् ध्वजा लहरायें जग में।
बनकर सच्चे आर्य सभी वैदिक संदेश सुनाएँ जग में।

—सत्यनारायण द्विवेदी

(बहराइच)

आपने जो जनज्ञान में प्रकाशित किया है कि जनज्ञान को साप्ताहिक प्रकाशित करने का विचार है अपना-अपना विचार है मेरे विचार में तो जनज्ञान मासिक अति उत्तम उपयोगी है। यह दिन प्रतिदिन उन्नति के पथ पर बढ़ता चला जा रहा है इसमें उच्च कोटि के लेख और साहित्य प्रकाशित होते हैं वह सब मासिक पत्रिका में ही सुरक्षित रह सकते हैं मासिक पत्रों पर जिल्द आदि भी चढ़ाई जा सकती है मासिक पत्र पुस्तक रूप में होते हैं जनज्ञान पत्र सर्वप्रिय होता जा रहा है आशा है कि शीघ्र ही कल्याण जैसा बहुत संख्या में प्रकाशित होने लग जायगा। मैंने अपने विचार लिखे हैं आप जैसा भी उचित समझें करें।

—भक्तराम शर्मा

सिघवाँ वेट,

आपके पत्र को मैं शुरू से ही निरन्तर पढ़ रहा हूँ आपके पत्र में सामाजिक व राजनैतिक व धार्मिक विचारों का सागर भरा मिलता है। अतः मैंने अपने इस पत्र का प्रचार करने का कर्त्तव्य समझा आज के युग में आपका जैसा साहित्य निकल रहा है और समाज को बहुत ही आवश्यकता है। क्योंकि देश गन्दे साहित्य की तरफ जा रहा है और नास्तिकता की ओर बढ़ रहा है। ऐसे समय में आपके साहित्य की देश व धर्म को बहुत बड़ी आवश्यकता है। मैं समझता हूँ कि मैं अपने जीवन में हमेशा आप की निगाह से ऐसे साहित्य को अपनाता रहूँगा।

—पालीराम आर्य

अन्तरंग सदस्य आर्य समाज

एटा

'जनज्ञान' को जिस सजावट से आप भेज रहे हैं वह सचमुच सर्वोत्कृष्ट है। इसलिये आप धन्यवाद के पात्र हैं। वैदिक-गीता, वेद-ज्योति हमारे जैसों के लिये नई सामग्री है। इसे पढ़कर हम अत्यन्त प्रसन्न हुए। आपका और बहिनजी का संपादकीय कुछ और ही रहता है। आपकी तड़प उसमें छिपी नहीं रहती। हमें पूर्ण विश्वास है, आपकी और आर्य समाज की पुकार एक दिन जरूर इन बहरे कानों तक पहुँचेगी और ज्ञान-प्रकाश जो आप वैदिक स्रोत से जनज्ञान जैसे साधनों से फैला रहे हैं, यह पाखण्ड-गुरूडमसे ग्रस्त अंधकार को दूर करके ही छोड़ेगा। वैदिक उषा का फिर उदय होगा। जिसके स्वर्णिम किरणों से मानव-जाति फिर से हरीभरी और प्रफुल्लित कर देगी।

—प्रद्युमनकुमार जिज्ञासु

बड़ौदा

नेकटाई : विषधर

श्रद्धेय पं० जी, सादर नमस्ते,

जब आपने लखनऊ में 'आर्य मित्र' के सम्पादन का भार ग्रहण किया था, तब से आपका परिचय परोक्ष से होता चला आ रहा है। प्रत्यक्ष में परिचय का मौका अभी तक नहीं मिला है। मौका मिला तो प्रत्यक्ष परिचय हो ही जाएगा। आप जैसे कलम के धनी कम ही नजर पड़ते हैं। ईश्वर आप को दीर्घायु रखें।

मैं एक ६८ वर्ष का सेवक यहां हूँ। इच्छा रहती है और यह इच्छा आज से ५२ वर्ष से चली आ रही है कि सुधार ही एक अमोघ अस्त्र है, जिसके द्वारा कुछ काम हो सकता है। इसी तरह मेरा जीवन रहा, अभी है और आगे भी रहेगा।

आपने अन्तराष्ट्रीय ईसाई तत्वों के विरुद्ध अनेकों पुस्तकें प्रकाशित की हैं किन्तु ईसाईयों द्वारा परिचालित एक विषधर सांप की ओर आपका ध्यान शायद अभी तक नहीं गया है। आप कहेंगे कि सांप क्या है, मैं कहूँगा वह है 'नेकटाई'। यह 'नेकटाई' ईसा के crucifixion चिन्ह है। यह 'नेक-टाई' हम भारतवासी के एक अमूल्य हार के रूप में लटक रहा है। हम भारतवासियों ने इस अमूल्य हार को अभी तक पहचाना ही नहीं है। शोक एवं' गर्व से धारण करते चले आ रहे हैं। वास्तविकता की तरफ ध्यान दिया ही नहीं। मैं तो एक आर्य सेवक हूँ—भारतीय पोशाक, खद्दरधारी हूँ। 'नेक-टाई' के मर्म को जानता ही नहीं। इस मर्म को जानने के लिए माफ करें, मैंने अनेक विद्वानों का दरवाजा खट खटकाया किन्तु किसी कोने से जवाब नहीं मिला। जब आप की ओर मेरा ध्यान गया, तो सोचा पं० जी ने ईसाईयत को पहचानने के लिए जहाँ अनेकों रास्ता बनाये हैं तो 'नेक-टाई' को पहचानने के लिए क्यों नहीं उनके दरवाजे खट-खटकाये। अतः इस विषधर सांप ने जो विशेष कर हमारे युवकों को डस लिया है, उससे छुटकारा कैसे दिलाया जाये, आप कृपया सोचें। हमारे युवक वृद्ध जनेऊ फेंक कर, 'नेक-टाई' बांधते जा रहे हैं, इस प्रभाव को आप एक खोजपूर्ण लेख द्वारा, वास्तविकता को बताते हुए शीघ्रतिशीघ्र एक ट्रैक्ट के रूप में प्रकाशित करें। यदि लेख छोटा हुआ तो मैं अपनी ओर से छपवा कर, निःशुल्क बाटूँगा।

आशा है उपर्युक्त विषधर सांप से युवक वृद्ध को बचा कर यश के भागी बनेंगे। लेख हिन्दी में तो हो साथ-साथ अंग्रेजी में भी हो, ऐसा ख्याल रखें। युक्तिपूर्ण तथा quotation के साथ लेख होना चाहिए।

आपका

प्रधान, आर्य समाज, आसनसोल —चन्द्रशेखर

आपकी भेजी हुई "जनज्ञान" की प्रतियों की जितनी अधिक प्रशंसा करें थोड़ा है क्योंकि जनज्ञान ही एक ऐसा मासिक पुस्तक है जिसके द्वारा दयानन्दजी का सन्देश समस्त जगह मिल सकता है आपके पुस्तक के लेखों से ऐसा मालूम पड़ता है कि कोई नया खून आ रहा है और एक चुनौती दे रहा है कि उठो आर्यो और अपने कर्तव्य को समझ कर वैदिक नाद बजाओ।

आगे मैं आपके जनज्ञान के लिये नये सदस्य बनाने का प्रयत्न कर रहा हूँ और प्रत्येक रविवारी सत्संग में कम से कम ५ मिनट इसी के ऊपर बोलता हूँ। आशा है कि इसी माह कुछ सदस्य बनाने मैं सफल हो जाऊँ। जनज्ञान में लिखा नारायन स्वामी का कथासार के कुछ लेख पढ़कर जो आनन्द आया उसका वर्णन नहीं कर सकता और ईश्वर से प्रार्थना है कि मेरा जनज्ञान रातों दिन उन्नति करे। इसी आशा से

— **विजयकुमार**
मंत्री आर्य समाज नामनेर आगरा

श्रीमान् मान्यवर पं० भारतेन्द्रनाथ जी

आप दोनों आर्य वीर तथा वीरांगनाको धन्यवाद है। आपने आर्यसमाज को जनप्रिय व आर्य समाजियों के चिन्तित चेहरों को जो आज समाजमें स्वार्थी व्यक्तियों के घुस जाने एवं धन के लोभ से प्रधान व मंत्री बना देने से निराश हो चुके थे। आशा का संचार कर दिया है आर्य समाज अवश्य फले-फूलेगा। ईश्वर आप दोनों प्राणियों को दीर्घ जीवन प्रदान करे व जनज्ञान के द्वारा भविष्य में कोई विद्वान देश काप्रधान मंत्री बनें तब ही देश का कल्याण हो सकेगा। मैं पहले ग्राहक था। धर्मपाल, मैंने हो ग्राहक बनाया है। अब हो सकेगा तो और ग्राहक बनाऊँगा।

बल्हारपुर
—**गंगाप्रसाद आर्य**

"नियमित मिल रहा है जिसमें एक से एक अंक बढ़कर रहता है, प्रत्येक अंक की तो क्या पूर्णतया एक अंक की भी प्रशंसा करना दुष्कर है आपकी विचित्र कला के प्रति नमस्कार !

अन्यत्र: दिसम्बर अंक से सूचित हुआ कि आप "धर्म राज्य" स्थापना का

व्रत लेते हैं और अपने सदस्यों से सहायता की याचना की जिसके प्रति अहसान आभारी हूँ।······मेरी दृष्टि में यह अत्यन्त ही गम्भीर एवं सर्वोत्तम संकल्प है। ऐसा करना महापुरुषों का निज कर्तव्य है। इसके प्रति भी हार्दिक आभारी है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि आपका संकल्प सफल करें मेरी अनुमति महर्षि के लक्ष्य की पूर्ति के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करना उचित है। मैं आपकी आज्ञा के पालन में धर्म और उलंघन में महापाप समझता हूँ। अतः जो भी संभव होगा अवश्य करने को सदैव तैयार हूँ। निःसंकोच आज्ञा देते रहिए।

यह स्पष्ट है कि महापुरुष अपनी प्रसिद्धि का प्रयत्न करके दूसरों को बढ़ावा देते हैं। इसी प्रकार आप अन्य शहीदों के चित्र अंकित किये किन्तु अपने नहीं किए सो मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने चित्र भी अंकित करें ताकि हम जैसे दर्शनाभिलाषी चित्रों में ही दर्शन करके अपनी पिपासा को बुझावें।

नीमचाना

—लक्ष्मणकुमार आर्य

आदरणीया बहन !

'जनज्ञान' मासिक का जनवरी अंक देखने का सुयोग हुआ— माध्यम बनी मेरी प्रिय छात्रा ज्योत्स्ना। जन्मतः सनातनी संस्कारों का व्यक्ति हूँ— फिर भी गुरुकुल काँगड़ी के समीप रहने से तथा आचार्य प्रवर इन्द्रजी के आशीष से मैं आर्य धर्म का तत्त्व भी अंशतः समझा हूँ। आपने इस यज्ञ में अपना जीवन अर्पित किया है—मेरा साधुवाद लें।

साहित्य अभिव्यक्ति का चिरंतन माध्यम है—अतः उसे यदि थोड़ी व्यापकता-विचारों एवं चिन्तन की मिलती है तो प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। यदि 'जनज्ञान' को आर्य धर्म का मुख-पत्र बनाकर इसे कुछ और व्यापक राष्ट्रीय-स्वरूप दे सकेंगी तो श्रेयस्कर होगा !

आप शिक्षिता एवं विचारिका हैं---मैं आपका सम्मान करता हूँ किन्तु व्यापक चिन्तन तथा राष्ट्रीय आधार ग्रहण करने का सुझाव देना भी कर्तव्य मानता हूं।

गाजियाबाद

—योगेन्द्रनाथ शर्मा अरुण अध्यक्ष
हिन्दी विभाग

माँ की लाज बचाओ !

* * *

आज प्रलय की आँधी औ तूफान उमड़ता आता है,
राम कृष्ण ऋषियों की भू पर काल चक्र मंडराता है,
मेरे देश के वीर पहरुओ, आर्य धर्म के रखवालो,
माँ की लाज बचाओ बढ़ कर, माँ ने तुम्हें पुकारा है।

पाखण्डों के दल-बल अब तो बढ़ते ही नित आते हैं,
पाप पुत्र ईसा के चेले चकमे खूब दिखाते हैं,
चाँदी के टुकड़ों से सबको, जा जाकर ललचाते हैं,
दीन-दुखी निर्धन जनता को, छलबल से बहलाते हैं।

अब न प्रतीक्षा की वेला है और न अवसर शेष सोच का,
घर-आँगन में आकर हमको, दुश्मन ने ललकारा है।।

हिमगिरि के शिखरों के नीचे विषधर के फन फैल रहे हैं,
मैदानों में वनखण्डों में, खेल अनोखे खेल रहे हैं,
देश-द्रोह की आग लगाकर, फैलाते हैं चिनगारी,
सर्वनाश के दावानल से, काँप उठी धरती प्यारी,

नागालैंड औ झारखंड का विस्फोटक भी नहीं सुना क्या ?
मृत्यु नींद में सोने वालो, सिर पर खड़ा दुधारा है।।

मातृ-भूमि जो शस्य श्यामला, प्यारी थी प्रिय प्राण से,
स्वतन्त्रता जो पायी हमने, कोटि-कोटि बलिदान से,
धर्म सभ्यता संस्कृति अपनी, परिपूरित जो ज्ञान से,
अमर तिरंगा, लहराया जो, गौरव से अभिमान से,

आज सभी पर फैल चुकी है काल-चक्र की काली छाया,
इन सबका जीवन संकट में, छली शत्रु हुँकारा है।

वेद-धर्म के मानस पुत्रो, दुश्मन की जयकार सुनो,
दयानन्द के वीर सैनिको, सुनो, शत्रु ललकार सुनो,
गाँव-गाँव में, गली-गली में, घर आँगन में फुलवारी में,
सर्वनाश विषधर का फन फुँकार रहा है हर क्यारी में,

ईसा के चालाक सिपाही ग्राम-ग्राम में घूम रहे हैं,
वे देते हैं नित्य चुनौती, क्यों ठण्डा रक्त तुम्हारा है?

आँख बन्द कर बैठे हो तुम, प्राण नहीं बच पायेंगे,
सोते रहे इसी भाँति तो, 'वेद' नहीं रह पायेंगे,
अगर तुम्हारा रक्त यूँ ही ठण्डा पानी बन जायेगा,
हर घर पर तब ईसा का, काला झण्डा लहरायेगा,

शपथ तुम्हें है मातृ-भूमि की, माँ के पावन दूध की,
उठो वीरवर उठो, 'वेद' ने तुमको वीर गुहारा है।

गर्जन करता है शृगाल, आज सिंहों की धरती पर,
पापों की थिरकन नर्त्तन है, आज सत्य की वेदी पर,
अज्ञान, अविद्या, अन्धकार, रक्षक बन बैठे ज्ञान के,
ओ सत्य ज्ञान के रक्षक तुम, क्यों सोये चादर तान के,

है गूँज रही रणभेरी अब, बज चुका युद्ध का बिगुल सुनो,
है धर्म बुलाता रक्षा हित, जागो जागो, अभियान करो!
ऋषियों की वाणी कंपित है, भारत का भाग्य सिसकता है।
पापी विषधर फुँकार रहा, वेदों ने तुम्हें पुकारा है।
माता ने तुम्हें पुकारा है।

—राकेश रानी

* * *

आवश्यकता है

* * *

—एम० ए० (छात्रा) १७ वर्षीय ब्राह्मण कन्या के लिए योग्य आर्य वर की। स्वस्थ, सदाचारी और वैदिक विचारों का होना आवश्यक। दहेज के इच्छुक पत्र व्यवहार न करें।

लिखें द्वारा। जे० २५६ "जनज्ञान"
१५६७ हरध्यानसिंह रोड नई दिल्ली-५

—क्लर्क, चपरासी, घरेलू महिला नौकर चाहिए। वेतन योग्यतानुसार लिखें।

द्वारा। के—I जनज्ञान......

—एम० ए० (छात्रा) १९ वर्षीय राजपूत कुलोत्पन्न आर्य परिवार की कन्या हेतु सजातीय, योग्य, स्वस्थ, सदाचारी वर चाहिए। कन्या के पिता पोस्ट ग्रेजुएट कालिज में प्राध्यापक हैं। संपर्क करें।

द्वारा—आर०—२१/जनज्ञान (मासिक)

वैश्य (बाथम) वर्ण की सुन्दर, सुशील, गृहकार्य में चतुर नवीं कक्षा तक पढ़ी षोडष वर्षीय आर्य कन्या के लिए आर्य परिवार के आर्य वर की आवश्यकता है, जो शुद्ध आहार, वैदिक विचार एवं शुद्ध वृत्ति का होवे। रोज़गार में लगे गुरुकुल के स्नातक तथा संस्कृतज्ञ को वरीयता दी जायेगी। इच्छुक व्यक्ति अपने विवरण सहित निम्न पते पर सम्पर्क करें। दहेज प्रेमी कृपया कष्ट न करें।

—बजरंगशरण गाँधी एम० ए०
नवाबगंज (गोंडा)

आप अपनी आवश्यकताएँ इस पृष्ठ में छपाने हेतु भेजें। शुल्क केवल १०) है।

नारी जगत्

वीरमती

देवगिरी नाम का एक छोटा-सा राज्य था। चौदहवीं शताब्दि में वहाँ के राजा रामदेव पर अलाउद्दीन ने चढ़ाई की। उसने राजा रामदेव के पास अधीनता स्वीकार करने के लिये संदेश भेजा, किन्तु सच्चे राजपूत पराधीन होने के बदले युद्ध में हँसते-हँसते मर जाना अधिक उत्तम मानते हैं। राजा रामदेव ने अलाउद्दीन को बहुत कड़ा उत्तर दिया। क्रोध में भरा अलाउद्दीन सेना के साथ देवगिरी पर चढ़ आया। लेकिन देवगिरी के राजपूत सैनिकों की शक्ति के सामने उसकी बड़ी भारी सेना टिक नहीं सकी। अलाउद्दीन के बहुत से सैनिक मारे गये। हारकर वह पीछे लौट पड़ा। देवगिरी में विजय का उत्सव मनाया जाने लगा।

राजा रामदेवकी सेना का एक मराठा सरदार किसी पिछले युद्ध में मारा गया था। उस सरदार की एकमात्र कन्या वीरमती को राजा ने अपनी पुत्री के समान पाला-पोसा था और जब वह चौदह-पंद्रह वर्ष की हुई तो अपनी सेना के कृष्णराव नाम के एक मराठा युवक से उसकी सगाई कर दी गयी। यह कृष्णराव बड़ा लोभी था। जब अलाउद्दीन हारकर लौट रहा था, तब कृष्णराव ने उसे देवगिरी किले का भेद इस लोभ से बता दिया कि विजयी होने पर अलाउद्दीन उसे देवगिरि का राजा बना देगा। देवगिरि के किले का भेद और वहाँ की सेना की शक्ति का पता पाकर अलाउद्दीन फिर सेना के साथ लौट पड़ा।

देवगिरि राज्य में विजय का उत्सव मनाया जा रहा था कि अलाउद्दीन के लौटने का समाचार मिला। राजा रामदेव ने कहा—'अवश्य किसी ने हम लोगों के साथ विश्वासघात किया है। बिना कोई विशेष सूचना मिले हारा

हुआ शत्रु फिर लौट नहीं सकता था। लेकिन चिन्ता की कोई बात नहीं। हम निश्चय ही शत्रु को फिर हरा देंगे।'

'हम अवश्य विजयी होंगे।' सभी राजपूत सरदारों तलवारें खींचते हुए कहा। लेकिन कृष्णराव चुप रह गया। सब लोग उसकी ओर देखने लगे और उसके चुप रहने का कारण पूछने लगे।

'यह देशद्रोही है ?' वीरमती ने इतने में ही सिंहनी के समान गरजकर कृष्णराव की छाती में तलवार घुसेड़ दी। कृष्णराव ने वीरमती से पहिले कुछ ऐसी बात कही थी, जिससे वीरमती को उस पर संदेह हो गया था।

मरते-मरते कृष्णराव बोला—'मैं सचमुच देशद्रोही हूँ, लेकिन वीरमती ! तुम्हारा···।'

वीरमती बीच में ही बोली—'मैं जानती हूँ कि मेरा तुमसे विवाह होने वाला था। मन से मैंने तुम्हें पति मान लिया था। हिंदू-कन्या एक को पति बनाकर फिर दूसरे पुरुष की बात भी नहीं सोच सकती। मैंने देशद्रोही को मारकर अपने देश के प्रति मेरा जो कर्तव्य था उसे पूरा कर दिया है। अब मैं सती धर्म का पालन करूँगी। इतना कहकर उसने अपनी छाती में वहीं तलवार मार ली और कृष्णराव के पास ही वह भी गिर पड़ी। ●

★

स्त्रियों के मुख्य धर्म

महर्षि दयानन्द भड़ोच में अमृत-वर्षा कर थे तो एक दिन बहुत से भार्गव ब्राह्मण और स्त्रियाँ स्वामी जी का उपदेश सुनने के लिए आये। स्त्रियों में अधिक संख्या अद्वैतानन्द की चेलियों की थी। स्वामी जी स्त्रियाँ से वार्तालाप करना नहीं चाहते थे, किन्तु उनके विशेष आग्रह और अनुरोध पर एक पर्दा उनके और अपने बीच डालकर उन्हें यह उपदेश दिया कि पति सेवा ही करना तुम्हारा धर्म है और पतियों से ही उपदेश लेना तुम्हारा कर्त्तव्य है मन्दिरों आदि स्थानों में आना-जाना और साधु संन्यासियों के दर्शन के लिए इधर-उधर घूमना, स्त्री जाति के लिए अत्यन्त अनुचित है। स्त्री जाति का मुख्य धर्म पति-सेवा और उत्तम रीति से सन्तति का पालन-पोषण ही है।

प्रेरक-प्रसंग

—स्व० स्वामी श्रद्धानन्द

मेरी जीवन संगिनी

मेरी धर्मपत्नी शिवदेवी का यह नियम था कि दिनका भोजन तो मेरे कर चुकने के बाद करती थीं, लेकिन रात को जब कभी मुझे देर हो जाती और पिताजी भोजन कर चुकते तो मेरा और अपना भोजन ऊपर मँगा लेती और जब मैं लौटता तब अंगीठी पर गरम करके मुझे भोजन करातीं और बाद को स्वयं करतीं।

एक रात मैं आठ बजे घर लौट रहा था। गाड़ी चौक के पास ही छोड़ दी। यहीं बरेली के वृद्ध रईस मुंशी जीवन सहाय का घर था। उनके बड़े पुत्र मुंशी त्रिवेणी सहाय ने मुझे रोक लिया। गजक मेरे सामने लाकर रखी। मैंने अस्वीकार किया। वे बोले—'तुम्हारे लिए ही तो दो—आतशा खिंचवाई है। यह जौहर है।'

त्रिवेणी सहाय के छोटे भाई मेरे मित्र थे। उन्हें मैं बड़े के समान समझता था। न तो मैंने दो 'आतशा का अर्थ समझा, न जौहर का' बस एक गिलास पी गया। फिर गप्पबाजी शुरू हो गई और उनके मना करने पर भी मैं चार गिलास और चढ़ा गया। वास्तव में वह बड़ी नशीली शराब थी। पीते ही प्रभाव मालूम हुआ।

दो तीन मित्र साथ चले। एक ने कहा—चलो मुजरा करायें। उस समय तक न तो मैं कभी वैश्या के मकान पर गया था और न कभी किसी वैश्या से बातचीत की थी। केवल महफिलों में नाच देखकर चला आता था। शराब ने इतना रंग दिखाया कि पांव ठीक से नहीं पड़ते थे।

हम एक वेश्या के कोठे पर जा धमके। कोतवाल साहब के बेटे को आया

हुआ शत्रु फिर लौट नहीं सकता था। लेकिन चिन्ता की कोई बात नहीं। हम निश्चय ही शत्रु को फिर हरा देंगे।'

'हम अवश्य विजयी होंगे।' सभी राजपूत सरदारों तलवारें खींचते हुए कहा। लेकिन कृष्णराव चुप रह गया। सब लोग उसकी ओर देखने लगे और उसके चुप रहने का कारण पूछने लगे।

'यह देशद्रोही है ?' वीरमती ने इतने में ही सिहनी के समान गरजकर कृष्णराव की छाती में तलवार घुसेड़ दी। कृष्णराव ने वीरमती से पहिले कुछ ऐसी बात कही थी, जिससे वीरमती को उस पर संदेह हो गया था।

मरते-मरते कृष्णराव बोला—'मैं सचमुच देशद्रोही हूँ, लेकिन वीरमती ! तुम्हारा···।'

वीरमती बीच में ही बोली—'मैं जानती हूँ कि मेरा तुमसे विवाह होने वाला था। मन से मैंने तुम्हें पति मान लिया था। हिंदू-कन्या एक को पति बनाकर फिर दूसरे पुरुष की बात भी नहीं सोच सकती। मैंने देशद्रोही को मारकर अपने देश के प्रति मेरा जो कर्तव्य था उसे पूरा कर दिया है। अब मैं सती धर्म का पालन करूँगी। इतना कहकर उसने अपनी छाती में वहीं तलवार मार ली और कृष्णराव के पास ही वह भी गिर पड़ी। ●

★

स्त्रियों के मुख्य धर्म

महर्षि दयानन्द भड़ोच में अमृत-वर्षा कर थे तो एक दिन बहुत से भार्गव ब्राह्मण और स्त्रियाँ स्वामी जी का उपदेश सुनने के लिए आये। स्त्रियों में अधिक संख्या अद्वैतानन्द की चेलियों की थी। स्वामी जी स्त्रियाँ से वार्तालाप करना नहीं चाहते थे, किन्तु उनके विशेष आग्रह और अनुरोध पर एक पर्दा उनके और अपने बीच डालकर उन्हें यह उपदेश दिया कि पति सेवा ही करना तुम्हारा धर्म है और पतियों से ही उपदेश लेना तुम्हारा कर्त्तव्य है मन्दिरों आदि स्थानों में आना-जाना और साधु संन्यासियों के दर्शन के लिए इधर-उधर घूमना, स्त्री जाति के लिए अत्यन्त अनुचित है। स्त्री जाति का मुख्य धर्म पति-सेवा और उत्तम रीति से सन्तति का पालन-पोषण ही है।

प्रेरक-प्रसंग

—स्व० स्वामी श्रद्धानन्द

मेरी जीवन संगिनी

मेरी धर्मपत्नी शिवदेवी का यह नियम था कि दिनका भोजन तो मेरे कर चुकने के बाद करती थीं, लेकिन रात को जब कभी मुझे देर हो जाती और पिताजी भोजन कर चुकते तो मेरा और अपना भोजन ऊपर मँगा लेती और जब मैं लौटता तब अंगीठी पर गरम करके मुझे भोजन करातीं और बाद को स्वयं करतीं।

एक रात मैं आठ बजे घर लौट रहा था। गाड़ी चौक के पास ही छोड़ दी। यहीं बरेली के वृद्ध रईस मुंशी जीवन सहाय का घर था। उनके बड़े पुत्र मुंशी त्रिवेणी सहाय ने मुझे रोक लिया। गजक मेरे सामने लाकर रखी। मैंने अस्वीकार किया। वे बोले—'तुम्हारे लिए ही तो दो—आतशा खिचवाई है। यह जौहर है।'

त्रिवेणी सहाय के छोटे भाई मेरे मित्र थे। उन्हें मैं बड़े के समान समझता था। न तो मैंने दो 'आतशा का अर्थ समझा, न जौहर का' बस एक गिलास पी गया। फिर गप्पबाजी शुरू हो गई और उनके मना करने पर भी मैं चार गिलास और चढ़ा गया। वास्तव में वह बड़ी नशीली शराब थी। पीते ही प्रभाव मालूम हुआ।

दो तीन मित्र साथ चले। एक ने कहा—चलो मुजरा करायें। उस समय तक न तो मैं कभी वैश्या के मकान पर गया था और न कभी किसी वैश्या से बातचीत की थी। केवल महफिलों में नाच देखकर चला आता था। शराब ने इतना रंग दिखाया कि पांव ठीक से नहीं पड़ते थे।

हम एक वेश्या के कोठे पर जा धमके। कोतवाल साहब के बेटे को आया

देखकर सब आवभगत में लग गयीं। बड़ी को मुजरा सजाने का आदेश हुआ। उसकी नौची के पास कोई रुपया देने वाला बैठा था। उसके आने में थोड़ी देर हो गई। न जानें क्या मेरे मुंह से अनाप-शनाप निकला। नौची घबराई हुई भागी-भागी आई और झुककर अदब से सलाम किया।

उसी समय मुझे किसी दूसरे विचार ने आ घेरा। उसने क्षमा मांगने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि मैं 'राम ! राम !!' कहते हुए कोठे से नीचे उतर गया। नीचे उतरते ही घर की ओर लपका। बैठक में पलंग पर जा गिरा और जूते आगे कर दिये, जो नौकर ने उतारे। फिर उठकर ऊपर जाना चाहा लेकिन खड़ा नहीं हो सका। उस वृद्ध नौकर ने सहारा देकर मुझे ऊपर तक पहुँचाया।

छत पर पहुँचकर रोज की तरह किवाड़ बन्द कर लिए और बरामदे में पहुंचा ही था कि उलटी होने लगी। उसी समय सुकोमल ऊँगलियों वाला एक हाथ सिर पर पहुंच गया और मैंने उलटी खुलकर की। अब शिवदेवी के हाथ में मैं एक अबोध की तरह पड़ा हुआ था। उसने कुल्ला कराया, मेरा मुंह पोंछा और मेरी कमीज जो खराब हो गई थी, बैठे-बैठे ही उतार दिया तथा मुझे सहारा देकर भीतर ले गई। पलंग पर लिटाकर मुझ पर चादर डाल दी और पास बैठकर सिर और देह दबाने लगी।

मुझे उस समय का करुणा और पवित्र प्रेम से भरा उसका मुख आजीवन नहीं भूलेगा। मैंने अनुभव किया कि माँ की ममतामयी छाया में निश्चित पड़ा हुआ हूँ, मेरी आँखें धीरे-धीरे बन्द हो गईं।

रात को घड़ी ने एक बजाया जब मेरी आँख खुली तो वह सोलह वर्षीय बालिका मेरा पैर दबा रही थीमुझे जोरों की प्यास लगी थी मैंने पानी मांगा।

उसने सहारा देकर उठाया। अंगीठी पर से दूध उतारा और उसमें चीनी डालकर मेरे मुँह को लगा दिया। दूध पीने पर कुछ शक्ति आई और होश हुआ। उसी समय मेरे दिमाग में से अंग्रेजी उपन्यास का नशा उतर गया और गोस्वामी जी की चौपाईयां याद हो आयीं।

मैं उसके पास खिसक कर आया कहा—'देवी ! तुम बराबर जागती रहीं और भोजन तक नहीं किया। अब भोजन करो।'

'आपके भोजन किए बिना मैं कैसे खाती ? और अब भोजन करने में क्या रुचि है ?' पत्नी ने कहा।

उस समय की दशा का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। अपने दुष्कर्म की कहानी सुनाकर मैंने पत्नी से क्षमा प्रार्थना की।

लेकिन वहाँ तो उसकी माता का उपदेश काम कर रहा था—'आप मेरे

स्वामी हैं, यह सब सुना कर मुझ पर पाप क्यों चढ़ाते हैं ? मुझे तो यहशिक्षा मिली है कि मैं बराबर आपकी सेवा करूँ।' उस रात बिना भोजन किए हम सो गए।

दूसरे दिन से मेरा जीवन ही बदल गया। छावनी के पारसी मद्य-विक्रेता का बिल बढ़ता ही जा रहा था। दो दिन में ही उसका तीन सौ रुपये का बिल आ पहुंचा। उस दिन दो रोज की मुहलत लेकर टाल दिया। मुझे चिन्ता तो थी ही, पत्नी ने भोजन कराते समय मेरी चिंता का कारण पूछा। अब तो हम परस्पर कोई बात छिपाकर नहीं रखते थे। मैंने सब कुछ साफ-साफ कह दिया।

पत्नी ने कुल्ला करवाकर हाथ मुंह धुलवाये और अपना भोजन करने से पहले ही अपने हाथ के कड़े उतार दिये। मैं चकित रह गया—'देवी ! यह कैसे हो सकता है ? तुम्हें आभूषित करने के स्थान पर तुम्हें आभूषणों से रहित करने का पाप कैसे लूं ?'

उसी समय मुझे ज्ञान हुआ—'पतिव्रता पत्नी पति की स्वास्थ्य रक्षा के समय माता, विपत्ति के समय भगिनी और उसे संतान सुख पहुँचाने के लिए धर्मपत्नी का रूप धारण करती है।'

धर्मपत्नी ने दूसरी जोड़ी दिखा कर कहा—'एक जोड़ी पिता जी ने और दूसरी जोड़ी श्वसुर जी ने दी थी। इनमें एक जोड़ी व्यर्थ पड़ी है। यह सब मेरा है और तन-मन भी आप का है, तो इसके लेने में क्यों संकोच है ? आपकी चिन्ता दूर करने का यह मंहगा सौदा नहीं है।

लालच से बचने के लिए मैंनें कर्ज चुकाने के बाद बाकी रुपये पत्नी के बक्स में रख दिये और मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि जब कमाने लग जाऊँगा, तो खर्च किये हुए धन को फिर से आभूषणों में मिला दूँगा। ●

एक सार्जेण्ट रंगरूटोंको परेड करा रहा था। उसने सबने सबसे एक लाइन में खड़े होने का आदेश दिया। लाइन बनी पर सीधी न बनी। वह क्रोधित हो गया और चिल्लाया, "बेवकूफो ! इसे लाइन कहते हैं ? खैर, फिर से लाइन बनाओ।"

सब रंगरूट तितर-बितर हो गये। सार्जेण्टने उन्हें एक लाइन में खड़ा करके कहा, "सब अपना दायाँ पैर ऊपर उठाओ।" सबने अपना-अपना दायां पैर ऊपर उठाया। गलती से एक रंगरूटने अपना बायां पैर उठा दिया, इससे लाइन में एक दायां और बायां पैर इकट्ठे हो गये। सार्जेण्टकी आँखों से चिनगारियाँ बरसीं। बड़े ही जोर से वह चीखा, "यह कौन नालायक है, जो दोनों पैर उठाये खड़ा है ?" ●

कहानी

धर्म की रक्षा

—चक्र

* * *

अमरसिंह की रानी पागल-सी हो उठी।

'शाहजहां के भरे दरबार में अपमान करने पर उसके वीर पति अमरसिंह ने बादशाह के साले सलावतखां का सिर उतार लिया था। बादशाह भय से भीतर भाग गया था और अमरसिंह घोड़े सहित दुर्ग के प्राचीर से कूद कर निकल आये थे। रानी का चाटुकार भाई अर्जुन गौड़ अमरसिंह को उलटा-सीधा सिखाकर महल में ले गया और पीछे से अमरसिंह को मार डाला।

शाहजहाँ ने अमरसिंह की नंगी लाश बुर्ज पर डलवा दी। चील-कौवे उस पर बैठने लगे।

इस समाचार से रानी की बुद्धि काम नहीं कर रही थी। उसके भेजे सभी सैनिक मार डाले गये। वे शव के समीप भी नहीं पहुँच सके।

'जिसकी लाश चील-कौवे खा रहे हैं—शाहजहाँ का यह कथन भी रानी ने सुना था—उसके खानदान में एक भी ऐसा नहीं जो उसकी लाश ले जाय?'

रानी बेचैन थी। अपने कहलाने वाले सभी लोगों के सामने वह रो पड़ी। उसने हाथ पसारा पर; किसी ने ध्यान नहीं दिया। रानी अधीर हो उठी।

'बांदी! मेरी तलवार ला'—रानी ने कहा, 'और मेरे साथ चल। मैं स्वयं महाराव की लाश शाहजहाँ के किले से निकाल कर ले आऊँगी।'

रानी ने सैनिकों का वेश बनाया, तलवार ली और अन्तः पुर की सभी नारियों ने तलवारें, भाले और बर्छे सँभाले।

'चाची, ठहरो।' दौड़ते हुए आकर रार्मसिंह ने कहा। 'मेरे जीवित रहते तुम्हें महल से बाहर जाने की आवश्यकता नहीं। पूज्य चाचा के निष्प्राण शरीर की रक्षा एवं उनकी अन्त्येष्टि मेरा परम पावन धर्म है। प्राण दे दूंगा मैं इसके लिए।'

'बेटा, जा !' रोते-रोते रानी ने आशीष दी। प्रभु तुम्हारी सहायता करें।

रो मत चाची ! घोड़े को एड़ लगाते हुए अमरसिंह ने कहा। 'चाचा जी के शव के साथ मैं अभी लौटता हूँ।

रामसिंह अमरसिंह के बड़े भाई जसवन्तसिंह का एकमात्र पुत्र अभी पंद्रह वर्ष का था, पर था अपने पिता एवं चाचा की ही भाँति वीर और पराक्रमी।

वह दौड़ पड़ा शाहजहाँ के दुर्ग की ओर।

दुर्ग का द्वार खुला था और तीर की भाँति एक युवक अश्वारोही उसे पार करने भीतर चला। द्वाररक्षक उसे पहचान भी न सके।

बुर्ज के निकट सैंकड़ों मुस्लिम सैनिक तैयार थे। युद्ध छिड़ गया। मुँह से लगाम पकड़े पंद्रह वर्ष के वीर बच्चे ने जिधर दोनों हाथ उठाये उधर ही शत्रु लोटते दीखते। अन्ततः वह बुर्ज पर चढ़ गया।

पूज्य चाचा जी का शव उठाया, उतरा और घोड़े पर बैठा। पुनः वही युद्ध। पर उस तेजस्वी बालक का अनेक सैनिक मिलकर भी कुछ अनिष्ट नहीं कर सके। वे ताकते रहे और रामसिंह दुर्ग से बाहर निकल गया !

महल में चिता पहले से तैयार थी।

'बेटा ! तूने मेरी सम्मान-प्रतिष्ठा एवं धर्म की रक्षा की है,' चरणों पर गिरे रामसिंह को उठाकर अत्यन्त स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरती हुई रानी ने आशीष दी, 'वैसे ही भगवान तेरी सदा रक्षा करें।

रामसिंह नेत्रों में आंसू भरे चुप-चाप देखता रहा। वह क्या बोलता, वाणी जो अवरुद्ध हो गई थी। ●

आवश्यक नोटिस

ग्राम विवार व ग्राम डीटा व ग्राम विभौनी तहसील मौदहा जिला हमीरपुर (उ० प्र०) में ज्ञान बहादुर, वीरेन्द्र बहादुर पुत्र राज बहादुर व विजय बहादुर पुत्र भवानी दीन व देवेन्द्र बहादुर पुत्र फतेह बहादुर की जायदाद आराजी मनकूला व गैर मनकूला यानी मकानात और खेत वगैरह शामिल शरीक मुशतरका खानदान है। चाहे वह खेत किसी एक के नाम हो या सभी के नाम से हो मशतर का खानदान है जब तक तीनों यानी सभी लोग रजामन्द न हों किसी एक को मकानात खेतों को बेचने का अधिकार नहीं है। अगर सबकी रजामन्दी के बिना कोई शख्श मकानात और खेतों वगैरह को खरीदेगा तो वह नाजायज समझा जायेगा। और खरीदने वाला खुद नुकसान उठावेगा वह अगर अदालत हुई तो कुल खर्च वगैरह का भी दनदार होगा यानि खरीददार के रुपये के हम लोग देनदार न होंगे। उसी को नुकसान उठाना होगा।

ज्ञानेन्द्र बहादुर, विजय बहादुर, देवेन्द्र बहादुर साकिन विदार :
जिला हमीर पुर (यू० पी०)

चौ० प्रतापसिंह का आदर्श दान

गुरुकुल महा विद्यालय जवालापुर जिला सहारनपुर का उत्सव १०, ११ १२, १३ अप्रैल १९७० को मनाया गया। इस उत्सव पर १२ अप्रैल को ४ विद्वानों का सम्मान किया गया और चौ० प्रतापसिंह ट्रस्ट करनाल की ओर से श्री स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक को इस वर्ष सामवेद के आध्यात्मिक भाष्य करने पर १०००) की भेंट, आचार्य उदयवीर शास्त्री संन्यास आश्रम गाजियाबाद को वेदान्त शास्त्र के इतिहास लिखने पर ६००) भेंट किए गए।

घोषणा करने पर दो विद्वानों ने अपने निबन्ध दिए। महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य की देन" १०००) का परितोषक रखा रखा गया था डा० सुधीर कुमार गुप्त संस्कृत विभाग विश्वविद्यालय जयपुर व आचार्य पं० धर्मदेव मार्तन्ड आनन्द कुटीर ज्वालापुर। ट्रस्ट ने २ विद्वानों की राय के पश्चात यह निर्णय किया कि ५००), ५००) दोनों विद्वानों को दिया जावे।

श्री भक्त दर्शन राज्य शिक्षा मंत्री केन्द्रीय सरकार जो दीक्षान्त भाषण के लिए पधारे थे के कर कमलों द्वारा विद्वानों को भेंट दी गई। डा० सुधीर कुमार गुप्त इस अवसर पर स्वयं उपस्थित नहीं थे। ५००) का ड्राफ्ट उनको भेज दिया गया इस अवसर पर लोगों की उपस्थिति १० हजार की थी। कुल रकम जो विद्वानों को दी गई २६००) रु० है।

राय साहब चौ० प्रतापसिंह द्वारा इस प्रकार आर्य विद्वानों का सम्मान करना आर्दश परम्परा है। इससे विद्वानों में आत्म गौरव और वेद सेवा हेतु उत्साह और प्रेरणा भाव उत्पन्न होते हैं।

आवश्यकता है।

संस्कृत तथा अंग्रेजी में निपुण कक्षा ग्यारहवीं तक की छात्राओं को धार्मिक शिक्षा देने में समर्थ आर्य महिला सहायक सुपन्टिन्डेन्ट की आवश्यकता है। निवास भोजन आदि का प्रबंध है। प्रधान, चन्द्र आर्य विद्या मन्दिर छात्रावास, सन्तनगर, लाजपतनगर-४, नई दिल्ली-१४।

—सरस्वतीकुमार 'दीपक'

बालक मूलशंकर

नन्हे-मुन्नो! आज सुनो तुम एक अनूप कहानी,
सच्ची एक कहानी बच्चो, है वह नहीं पुरानी।
दक्षिण भारत के पश्चिम में जहाँ कि है खाडी खम्भात,
बात सुनाता जहाँ, मगन हो करके नित अपनी गुजरात।

उसी प्रान्त की पुण्य भूमि में छोटा-सा टंकारा ग्राम,
जहाँ जन्म लेकर पाया था, इस बालक ने मूला नाम।
जैसे होते, होनहार बिरवा के चिकने-चिकने पात,
यह बालक भी लेकर जन्मा, सुन्दर सपने अपने साथ।

था, ब्राह्मण का पुत्र, पिता करता था जप-तप भारी,
पूजा, जप, और व्रतों में आयु बितायी सारी।
बात पुरानी मां पर बेटी, और पिता पर घोड़ा,'
नहीं मूलशंकर ने पावन पंथ पिता का छोड़ा।

उसी भाँति वह पूजा करता, व्रत की रीति निभाता,
जब करता उपवास, समय से पूर्व नहीं था खाता।
दिन बीते, कुछ बड़ा हो गया, 'जयशंकर ध्वनि'-आयी,
व्रत का दिवस बिता करके, शिवरात्रि धूम से आयी।

शिव-मन्दिर में साथ पिता के, यह बालक भी जागा,
नहीं जागरण के निश्चय को, इस बालक ने त्यागा।
सोये उसके पिता और सोये थे सभी पुजारी,
दीप जला था मन्दिर में, जब बाहर थी अंधियारी।

ठीक बीच में मन्दिर के शिवलिंग वहाँ शोभित था,
दीप-ज्योति से जिसका कोना-कोना आलोकित था।
बिल्व-पत्र, फल-फूल, मिठाई शिव पर गये चढ़ाये,
भक्त गांव भरके, पूजा के लिए धूम से आये।

था प्रसाद का ढ़ेर, पुजारी सपनों में सोये थे,
साथ समाधि लगाकर, सबके शिवशंकर सोये थे।
सोच रहा था बालक, शिवकी लीला पर मुस्काया,
तभी एक कोने से चूहा, चूँ-चूँ करता आया।

इधर-उधर देखा, भक्तों का सारा दल सोया है,
जाग रहा है बालक, जो अपनी धुन में खोया है।
चूहा दौड़ा-दौड़ा कोने से आंगन में आया,
बैठ मूर्ति के ऊपर उसने, अपना भोग लगाया।

फूल कुतर कर, केले काटे, चला आम लुढ़काता,
देख रहा था भोला बालक, अपने नयन नचाता।
सोचा मन में, शिवशंकर है, प्रलयंकर त्रिपुरारी,
रुद्र नेत्र से जल सकती है जिनके पृथ्वी सारी।

उसके सिर पर चढ़कर चूहा, उनका भोग चुराये,
हुआ अचम्भा भारी कुछ भी नहीं समझ में आये।
तभी सत्य की ज्योति हृदय में इस बालक के जागी,
'क्या होता पत्थर पूजा से ?' बन सत्य अनुरागी।

सच्चा व्रत है जग की सेवा, पूजा स्नेह बढ़ाना,
सच्चा जप, तप भरे त्याग में, है सब ओर बहाना।
मन्दिर छोड़ा, घर भी छोड़ा संत का शंख बजाया,
बालक यही बड़ा होकर, ऋषि दयानन्द कहलाया।

जिसने आर्य-भूमि को पावन यज्ञों से महकाया,
जाति-पांति के भ्रम का जिसने पर्दा दूर हटाया।
अबला को सबला बनने का, जिसने पाठ पढ़ाया,
सत्य-अर्थ बतला कर जिसने पावन पंथ दिखाया।

वीर बालक पुत्ता

अकबर के सैनिकों ने चित्तौड़ का घेरा डाल रखा है। केसरिया बाना पहिन कर हजारों वीर राजपूत देश और धर्म की बलिवेदी पर अपने-अपने प्राणों की आहुति अर्पण कर चुके हैं। वीर जयमल वीर गति को प्राप्त हो चुके हैं। अब सोलह वर्ष का एक बालक पुत्ता अपनी वीरता का प्रदर्शन करेगा। माँ के दूध का ओज प्रगट करेगा।

माँ कर्मदेवी ने सिर सूँघा, आशीर्वाद दिया। हँसते-हँसते कवच और शस्त्रधारी पुत्र को युद्ध के लिये विदा किया।

वीर बहिन कर्णवती ने थाल में रोली और अक्षत लेकर वीर भाई को तिलक लगाया और प्रसन्नतापूर्वक युद्ध में जाकर विजय प्राप्त करनें का आदेश दिया।

वीर पुत्ता को विदा करके कर्मदेवी, कलावती और कर्णवती भी मर्दाना वेश बनाकर और केसरिया बाना पहन कर घोड़े पर सवार हो और वस्त्र सम्भाल युद्धक्षेत्र की ओर चल पड़ीं।

वीर पुत्ता बिजली के समान मुगल दल पर टूट पड़े उसकी सेना बड़ी वीरता से लड़ रही थी। घमासान का रण पड़ रहा था। मुगलों के पाँव उखड़ गये, वे भाग खड़े हुये। दूर से अपनी सेना का बुरा हाल होता देखकर सेना सहित अकबर सहायता को आ पहुँचा। परन्तु प्रगति रुक गई। उसके सैनिक गोलियों की मार से बेरों के समान पटापट गिरते रहे थे। गोलियाँ कहाँ से कौन चला रहा है? पुत्ता की ओट में से गोलियाँ घड़घड़ाती हुई आ रही थीं। सामने कोई दिखाई न देता था। कुछ पास जाकर अकबर ने देखा-तीन स्त्रियाँ हैं। वह और

भी अधिक अचरज में पड़ गया। उसके मुख से निकल ही तो गया-शाबाश! शबाश!!

दोपहर हुई। दिन ढला। शाम हो गई, अकबर और उसकी सेना को कोई पार बसा न रही थी। अकबर ने अपने सैनिकों को ललकारा। कहा-'तुम कैसे सैनिक हो जो स्त्रियों का भी सामना नहीं कर सकते ?'

कर्णावती गोली खाकर मारी गई। थोड़ी देर में कलावती और कर्मदेवी घायल होकर गिर पड़ीं। उधर की सेना को पूर्णतया पराजित करके वीर पुत्ता भी आ पहुँचा। माँ, बहिन और स्त्री को देख आश्चर्य भी हो रहा था, प्रसन्नता भी। अकबर की सेना को दिन भर किसने रोका है? यह अब स्पष्ट ज्ञात हो गया। पत्नी ने पति को देखा। माता ने पास बुलाकर पुत्र का मुँह चूंमा और दोनों विजय की आभा से चमकती हुई मुखमुद्रा के साथ स्वर्ग को चली गईं। ●

आप 'जन-ज्ञान' की सहायता इस तरह भी कर सकते हैं

१—जब भी आप को चन्दा समाप्ति की सूचना मिले, आप अपना शुल्क तुरन्त भेज दें।

२—वी. पी. पी. की प्रतीक्षा न करें। वी. पी. पी. में आपको १) अधिक देना पड़ता है जो न हमें मिलता है न आपको। इसलिए धन मनिआर्डर से ही भेजें।

३—यदि किसी कारण वश आप सदस्य न रहना चाहें तो हमें सूचित तो कर ही सकते हैं। आपके १० पैसे का कार्ड हमारे धन और समय की रक्षा कर सकता है।

४—मनिआर्डर के कूपन पर अपना पूरा नाम और पता अवश्य लिखें! सदस्य संख्या या **"नया सदस्य"** शब्द भी लिख दें।

५—'जन-ज्ञान' आपका अपना पत्र है। इसमें जो कमी नज़र आए वह हमें बताएँ। हम आपके बल पर इसके द्वारा संसार में आर्य समाज का संदेश फैलाना चाहते हैं। आपका सहयोग ही हमारी शक्ति है—

—व्यवस्थापक

आइए, सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें

सत्यार्थ प्रकाश क्यों लिखा गया ?

सत्यार्थ प्रकाश महर्षि दयानन्द लिखित समस्त वेदादि शास्त्रों का सार और मार्ग दर्शक ग्रंथ है। इसके सम्वन्ध में कुछ भी जानने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि यह क्यों लिखा गया ?

महर्षि दयानन्द के अपने शब्दों में इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—

"मेरा इस ग्रन्थ को वनाने का प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है। अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादित करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है।"

ऋषि के वचन अत्यन्त स्पष्ट हैं। वे इस ग्रन्थ द्वारा सत्य का प्रसार कर असत्य से सभी को परिचित कराना चाहते थे। बिना किसी भय संकोच या लाग लपेट के सत्य का प्रगटीकरण ही ऋषि को इष्ट था। यह तो ठीक हुआ कि सत्य असत्य का ज्ञान सभी को होना चाहिए, किन्तु सत्य क्या है, असत्य क्या है, इस सम्बन्ध में निर्णय कैसे हो ? सभी अपना पक्ष सत्य और दूसरे का असत्य वताते हैं। इस सम्बन्ध में महर्षि लिखते हैं—

> "वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाए किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना 'सत्य' कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है। इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।"

महर्षि के उक्त शब्दों का आप मनन करेंगे तो ज्ञात होगा कि ऋषि सत्य के कितने प्रबल समर्थक थे। असत्य को सत्य के रूप में प्रस्तुत करना उन्हें सह्य नहीं था। अतः सभी को पक्षपात छोड़—निष्पक्ष भाव से सत्पथ बताना उन का लक्ष्य था।

महर्षि ने इसी को और भी स्पष्ट करते हुए आगे लिखा है कि—

> "विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें।"

ऐसा करने का लाभ बताते हुए महर्षि लिखते हैं कि—इससे—

> "वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।"

जब तक मनुष्य सत्य असत्य का ज्ञान प्राप्त नहीं करता उसका विवेक सोया रहता है और वह असत्य को ही सत्य समझ अपने कार्य करता है जिस का स्वाभाविक परिणाम होता है दुःख प्राप्ति। किन्तु दुःख कोई चाहता नहीं, इसीलिए ऋषि चाहते हैं कि मिथ्यार्थ को सभी त्याग दें क्योंकि असत्य के त्याग से सारे दुःख स्वयं दूर हो जाएँगे। अतः आनन्द प्राप्ति के लिए सत्य का ज्ञान महर्षि आवश्यक समझते हैं। सार यह है कि आनन्द प्राप्ति का मार्ग सत्य को जाने बिना नहीं जाना जा सकता। इसलिए आनन्द और सत्य एक साथ ही रहते हैं।

> महर्षि का निश्चित विचार था कि—"मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि हठ दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।

दुःख कोई नहीं चाहता फिर भी दुःख मिलते हैं, क्यों···इसलिए कि अविद्या से असत्य को ही सत्य समझ हम ऐसी राह पर चल पड़ते हैं जो दुःखों की ओर ले जाती है। इसलिए महर्षि प्रत्येक स्थिति में असत्य के आवरण को दूर करना चाहते थे। असत्य ही उनकी दृष्टि में मानव जाति के दुःखों का मूल कारण था।

असत्य में पड़े मानवों को सत्यमार्ग पर चलाना ऋषि का इष्ट था किन्तु इस कार्य की सिद्धि के लिए भी वे किसी का हृदय नहीं दुखाना चाहते थे। उन्होंने लिखा है कि—

> न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है।

यह वाक्य ऋषि के हृदय की भावना को स्पष्ट कर रहे हैं। इतनी उदारता और प्रेम भावना किसी भी सुधारक के हृदय में खोजने से भी

मिलनी कठिन है। वस्तुतः महर्षि मनुष्य मात्र को आनन्द और शान्ति के मार्ग पर चलाकर समस्त दुःखों से छुटकारा दिलाना चाहते थे।

वे लिखते हैं—

> "जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर, सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।"

निष्पक्ष भाव से महर्षि के उक्त शब्दों पर विचार करने से प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करने पर बाध्य होगा कि—

महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश इसलिए लिखा। कि—

१. मनुष्य जाति की उन्नति हो।

२. मनुष्य मात्र का उपकार हो।

३. सभी सत्य और असत्य को जानें।

४. सत्य का ग्रहण व असत्य का परित्याग करें।

५. क्योंकि केवल सत्य ही मनुष्य जाति के उत्थान का आधारभूत कारण है। कौन बुद्धिमान व्यक्ति संसार में ऐसा होगा जो ऋषि की भावना से असहमत हो सके। अन्धकार मिटना चाहिए, प्रकाश होना ही चाहिए…यह निश्चित विचार ही प्रेरक था ऋषि को, जिसने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश को जन्म दिया।

सत्यार्थ प्रकाश निर्माण के ऐतिहासिक महत्व पर अगले अंक में विचार करेंगे।

—**भारतेन्द्र नाथ**

वी० पी० पी० को प्रतीक्षा न करें।

जब आपको शुल्क समाप्ति का पत्र मिले तो कृपया तुरन्त ही १०) **मनिआर्डर से भेज दें।** वी० पी० पी० में आपको १) ४० पैसे अधिक देने पड़ते हैं और हमारा कार्य भी बहुत बढ़ जाता है। मनिआर्डर से तुरन्त ही अपना शुल्क भेजकर आप 'जनज्ञान' की सहायता कर सकते हैं—

विनीता
राकेश रानी
संपादक

शक्ति और स्फूर्ति
के लिये
च्यवनप्राश
टॉनिक है
गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी
हरिद्वार

गुरुकुल कांगड़ी
ब्राह्मी तैल
ब्राह्मी तै
फार्मेसी हरिद्वार

सभी आयुर्वेदिक औषधियों के लिए गुरुकुल कांगड़ी फ़ार्मेसी
सदा स्मरण रखें।
बड़ा सूचि पत्र व एजेंसी नियम मँगाएँ।
**व्यवस्थापक-गुरुकुल कांगड़ी फ़ार्मेसी P. O. गुरुकुल
कांगड़ी (सहारनपुर)**

वैदिक धर्म सम्बन्धी महत्वपूर्ण ग्रन्थ

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

तत्वज्ञान	३-००
प्रभुदर्शन	२-५०
प्रभुभक्ति	१-५०
आनन्द गायत्री कथा	०-७५
एक ही रास्ता	१-००
शंकर और दयानन्द	०-७५
सत्यनारायण व्रत कथा	०-७५
भक्त और भगवान	१-००
मानव जीवन गाथा	१-००
उपनिषदों का सन्देश	१-००
घोर वने जंगल में	२-५०
महामन्त्र	१-२५
सुखी गृहस्थ	१-००
बोध कथाएँ	३-५०
मानव और मानवता	४-५०

प्रो० नित्यान्द वेदालंकार कृत

पूर्व और पश्चिम	७-५०
जीवन की राहें	४-००
प्रार्थना दीप	२-००
सन्ध्या विनय	१-००
सु-राज्य की रूपरेखा	०-५०

ब्र० जगदीश विद्यार्थी कृत

दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	४-००
विद्यार्थी लेखावली	३-००
वैदिक प्रश्नोत्तरी	२-००
वेद-सौरभ	२-००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	२-००
ईशोपनिषद्	२-००
कुछ करो कुछ बनो	२-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	१-००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१-५०
दिव्य दयानन्द	१-२५
प्रार्थना प्रकाश	१-२५
प्रभात वन्दन	१-२५
हास्य विनोद	१-००
विष्णु पुराण की आलोचना	०-४०
ऋग्वेद शतकम्	१-००
अथर्ववेद शतकम्	१-००
यजुर्वेद शतकम्	१-००
सामवेद शतकम्	१-००

वेद प्रकाश 'मासिक' का नमूना बिना मूल्य मंगाएं

बड़ा सूचीपत्र मंगाइए

⊙

गोविन्दराम हासानन्द

नई सड़क दिल्ली

प्रत्येक आर्य समाज कालेज, स्कूल तथा वाचनालय
और आर्य परिवार में रहना ही चाहिए

वैदिक धर्म सम्बन्धी साहित्य

1. The Arya Samaj it's cult. and creed.

आर्यसमाज के गौरव, प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य श्री वैद्यनाथ शास्त्री द्वारा लिखित अनमोल ग्रन्थ, जो प्रत्येक विरोधी विचार वाले व्यक्ति को वैदिक विचारधारा का बनाने की सामर्थ्य रखता है। भेंट के लिए सर्वोत्तम।

सजिल्द, पृष्ठ २७०, मूल्य १०)

2. Gems of Aryan Wisdom मूल्य २·५०

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री लिखित, अंग्रेजी में वैदिक विचार धारा वेद मन्त्रों के आधार पर प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत की गयी है। शिक्षित वर्ग की आंखें खोलने के लिये अनुपम।

3. Vedic Caste System

वैदिक वर्ण व्यवस्था पर आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री लिखित यह पुस्तिका अनुपम है। मूल्य केवल २५ पैसे

4. **तत्वार्थदर्श। पृष्ठ २७० सजिल्द** मूल्य ५·००

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री ईश्वर, जीव, प्रकृति आदि सभी दार्शनिक विषयों पर विद्वान् लेखक ने अत्यन्त सुलझे और प्रभावशाली ढंग से अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। ग्रन्थ प्रत्येक स्वाध्यायशील के लिए संग्रह योग्य है।

5. **वैदिक इतिहास – विमर्श।** मूल्य ७·२५

वेद में इतिहास नहीं है, इस विषय पर सब से अधिक प्रमाणिक ग्रन्थ। विरोधी विद्वानों के मस्तिष्क बदलने में समर्थ आचार्य वैद्यनाथ जी का महत्वपूर्ण ग्रन्थ।

6. **वैदिकयुग और आदि मानव** 'वैदिक एज' में प्रकाशित विचारों का मुंह तोड़ उत्तर : आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री की सशक्त लेखनी से।

सजिल्द मूल्य ४·००

सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रकाशित
आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री द्वारा सम्पादित
अंग्रेजी में आर्यसमाज के एक मात्र मासिक
VEDIC-LIGHT
के सदस्य बनिए
नमूना पत्र लिखकर बिना मूल्य मंगाइये
वार्षिक मूल्य १०) विदेश में १ पौंड

प्रकाशन विभाग सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
रामलीला मैदान नई दिल्ली-१

पुस्तक परिचय

२. कुरआन परिचय। लेखक पं० देवप्रकाश जी, प्रकाशक आर्य समाज रतलाम। पृष्ठ ६४८, मूल्य ५)

पुस्तक अपने ढंग की अनुपम है। कुरआन की वास्तविकता का चित्र सामने आ जाता है। प्रत्येक आर्य समाज में अधिक से अधिक, शीघ्र से शीघ्र आनी चाहिएं। संकेत समझें और जल्दी मंगाएँ। अन्यथा·········

२. Light of Vedas लेखक श्री रामलाल व पं० ज्ञानेश्वर जी। प्राप्ति स्थान ७१ रिंग रोड लाजपत नगर ३ नई दिल्ली २४। मूल्य १.७५।

वेद के चुने हुए १०७ मंत्रों की हिन्दी अंग्रेजी में व्याख्या पुस्तक की अपनी विशेषता है। स्वाध्याय शील सज्जनों व भेंट आदि के लिए भी पुस्तक उपयोगी है।

३. १८५७ और स्वामी दयानन्द। लेखक श्री वासुदेवजी व वैद्य रामगोपाल जी, आर्य समाज रोड करोलबाग नई दिल्ली ५। मूल्य २)। पृष्ठ १२०।

प्रस्तुत पुस्तक में महर्षि दयानन्द की राजनैतिक विचारधारा को एक स्थान पर प्रकाशित कर सराहनीय श्रम किया है। स्वतंत्रता के बाद स्वराज्य संरक्षण हेतु पुस्तक का व्यापक प्रचार लाभप्रद है। मूल्य यदि कम होता और ग्रंथ अधिक संख्या में छपता तो उत्तम था। फिर भी यत्न उत्तम और अभिनन्दनीय है। राजनीति के प्रत्येक विद्यार्थी को पुस्तक पढ़नी चाहिए।

—**भारतेन्द्र नाथ**

प्रत्येक आर्य का यह परम धर्म होना चाहिए कि वह वैदिक विचारधारा प्रसार हेतु प्रति माह यथा शक्ति साहित्य बाँटे। साहित्य के द्वारा ही हम महर्षि दयानन्द का लक्ष्य पूरा कर सकते हैं।

—संपादक

कृपया अपना शुल्क
चन्दा समाप्ति की सूचना
मिलते ही भेज दें ।

वी० पी० पी० की प्रतीक्षा न करें

यह आपका आगे बढ़ने हेतु
हमें भारी सहयोग होगा

—भारतेन्द्र नाथ

भीमसेनी
काजल
आँखों को नीरोग
और सुन्दर बनाता है
मुरारी ब्रदर्स
६-7, मॉडल टाउन देहली-९

प्रकाशक—सम्पादक राकेश रानी
मुद्रक—भाटिया कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा वार्ष्णेय प्रेस दिल्ली ।

वैदिक साहित्य साधना में लीन
ब्र. जगदीश विद्यार्थी एम. ए.

जैन–ज्ञान (मासिक)

१५९७, हरध्यानसिंह
मार्ग नई दिल्ली-५

मई १९७०

रजिस्टर्ड नं०
D. 1631

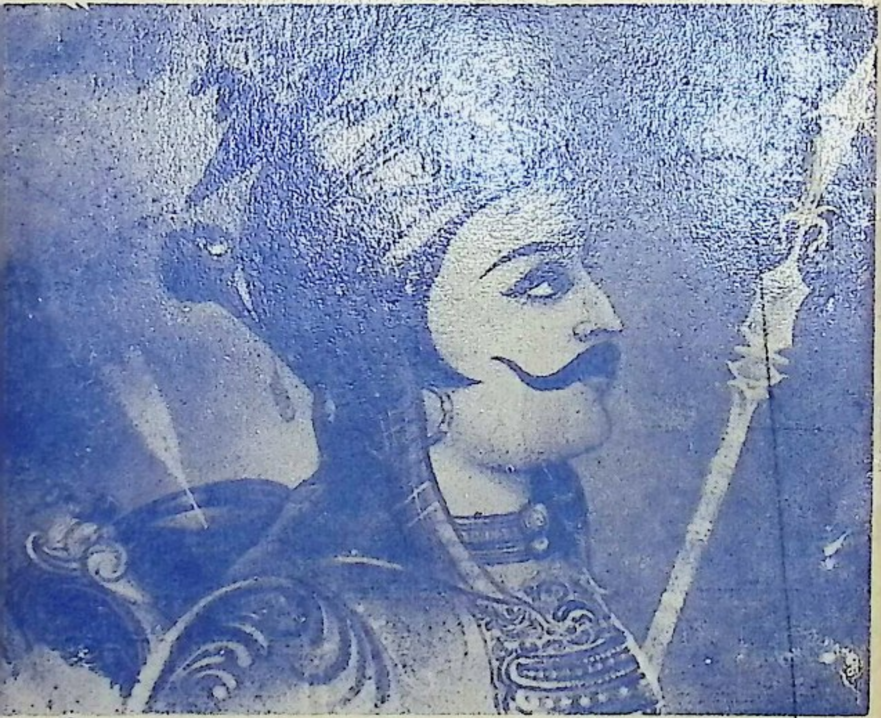

महाराणा प्रताप

भारत की रक्षा के लिए प्रताप
का शौर्य पुनः सर्वत्र जागना चाहिए —संपादक